ओ३म्

दयानन्दसन्देश

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट का मासिक पत्र

अगस्त २०१९

Date of Printing = 05-8-19
प्रकाशन दिनांक= 05-8-19

वर्ष ४८ : अङ्क १०
दयानन्दाब्द : १९५
विक्रम-संवत् : श्रावण-भाद्रपद २०७६
सृष्टि-संवत् : १,९६,०८,५३,१२०

संस्थापक : **स्व० ला० दीपचन्द आर्य**
प्रकाशक व सम्पादक : धर्मपाल आर्य
सह सम्पादक : ओमप्रकाश शास्त्री
व्यवस्थापक : विवेक गुप्ता

कार्यालय :

दयानन्दसन्देश (मासिक)

४२७, मन्दिर वाली गली, नया बांस,
खारी बावली, दिल्ली-६
दूरभाष : २३९८५५४५, ४३७८११९१
चलभाष : ९६५०५२२७७८

एक प्रति ५.०० रु०

वार्षिक शुल्क ५०) रुपये
आजीवन सदस्यता ५००) रुपये
विदेश में २०००) रुपये

इस अंक में

- १९६९ में काशी शास्त्रार्थ २
- वेदोपदेश ३
- स्वतन्त्रता के माने ५
- सांख्य में योग के अष्टांग ९
- वेदों का प्रवेश द्वार... १२
- श्रीराम प्रजा को..... १५
- ऐसा क्या लिखा सावरकर ने? १६
- इन्द्र व उसका सोमपान २१
- युवा पीढ़ी से.... २६

विशेष : दयानन्द सन्देश में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। उनसे सम्पादक की पूर्णतया सहमति आवश्यक नहीं है। अतः किसी भी चर्चा/परिचर्चा एवं वाद-विवाद के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी होंगे।

सत्यार्थप्रकाश

प्रचार संस्करण स्पेशल (सजिल्द)

३००० रुपये सैकड़ा
५००० रुपये सैकड़ा में प्राप्त करें।

- 1969 में काशी शास्त्रार्थ की शताब्दी के कार्यक्रम में क्या हुआ था?

श्री महेन्द्रप्रताप शास्त्री (मन्त्री-काशी शास्त्रार्थ शताब्दी, वाराणसी 1969) के 'दो शब्द'

- काशी शास्त्रार्थ की शताब्दी के अवसर पर काशी में पण्डित ओमप्रकाश शास्त्री का 'साकारवाद की अन्त्येष्टि' विषय पर विद्वतापूर्ण प्रवचन

महेन्द्र प्रताप शास्त्री स्रोत:- 'पौराणिक आचार्यों की दृष्टि में साकारवाद' प्रस्तुति : भावेश मेरजा

ऋषि दयानन्द ने सन् १८६९ में हरिद्वार में कुम्भ के अवसर पर 'पाखण्ड-खण्डिनी पताका' लहराई थी, जो भविष्य में पाखण्ड, अन्ध-विश्वास और रूढ़ियों के उच्छेदल की प्रतीक बनकर आर्यों के हृदयों को इनके उन्मूलन की प्रेरणा देती रही। ऋषि के वेद प्रचार कार्यक्रम की दूसरी प्रमुख घटना उनके तथा भारत के तात्कालिक सनातन धर्मी विद्वानों के बीच हुआ सन् १८६९ का प्रसिद्ध 'काशी-शास्त्रार्थ' था। ये दोनों घअनाएं उत्तर प्रदेश में हुई थी, अतः आर्य प्रतिनिधि सभा, उत्तर प्रदेश ने ऋषि दयानन्द के जीवन से सम्बन्धित इन दोनों महत्वपूर्ण घटनाओं को दिसम्बर १९६९ में अखिल भारतीय स्तर पर शताब्दी मनाने का निश्चय किया। कार्यक्रम तैयार किया गया, देश के कई भागों में प्रचार शास्त्रार्थ आदि किए गये और दिसम्बर २३ से २८ तक मुख्य समारोह वाराणसी में करने का निश्चय किया गया। यह स्वाभाविक ही था कि सनातनी भाइयों में इसकी प्रतिक्रिया हुई और उन्होंने भी उन्हीं दिनों वाराणसी में ही अपना विशेष आयोजन रखा। इससे उन दिनों वाराणसी तथा समीपवर्ती स्थानों में ये समारोह सार्वजनिक आकर्षण के विषय बन गये। स्थान-स्थान पर, समाचार पत्र आदि में इनकी प्रमुख रूप से चर्चा होनी लगी। आर्यसमाजी कार्यकर्ता प्रायः सनातन धर्म के सभामण्डप में जाकर शंकाएं रखने लग गये, जो कभी-कभी संक्षिप्त वाद-विवाद का रूप धारण कर लेती थी। संवाददाता गण संवाद देने के लिए लालायित हो उठे और समाचारपत्रों में दोनों ओर से अपने पक्ष की पुष्टि में वक्तव्य प्रकाशित होने लगे।

उन्हीं दिनों कुछ सज्जन हमारे पास आये और कहा कि आप लोग कहते हैं कि मूर्तिपूजा अवैदिक है, वेदों में मूर्तिपूजा का नाम भी नहीं, परन्तु वे लोग कहते हैं कि मूर्तिपूजा वैदिक है। क्यों न इसका निर्णय एक सार्वजनिक शास्त्रार्थ द्वारा कर लिया जावे। विचार-परामर्श प्रारम्भ हो गया, शास्त्रार्थ के स्थान, व्यवस्था, नियम आदि पर विचार होने लगा। यह पूर्ण भी न हो पाया था कि एक दिन सायंकाल, जब आर्य समाज का सभा मण्डप खाली पड़ा था (नर-नारी सायंकालीन नित्य कर्म के लिए इधर-उधर गये हुए थे) अचानक ही लगभग दो हजार सनातनी साधु, संन्यासी तथा उनके अनुयायी शिविर में आ गये और मञ्च एवं मण्डप में बैठ गये। उस समय का वातावरण अत्यन्त उत्तेजनापूर्ण था। बाहर से आने वाले सज्जन नारे लगा रहे थे और शान्ति रखने के प्रयासों को विफल कर रहे थे। कुछ ही देर में सिटी मजिस्ट्रेट एक अन्य अधिकारी के साथ वहाँ आ गये और परिस्थिति को देखकर वहाँ १४४ धारा लगाकर जनता को सभा मण्डप खाली करने का आदेश दे दिया। इस प्रकार शास्त्रार्थ करने का एक सुन्दर अवसर हाथ से निकल गया। शताब्दी समारोह में व्याख्यान देने तथा संभावित शास्त्रार्थ में आर्य-समाज का पक्ष प्रतिपादन करने के लिए हमने जिन विद्वानों को आमन्त्रित किया था, उनमें आर्यसमाज के सुपरिचित वाग्मी, शास्त्रार्थ महारथी पं. ओमप्रकाश शास्त्री जी भी थे। शास्त्रार्थ सम्बन्धी पत्र-व्यवहार तथा विचार-परामर्श में भी शास्त्री जी के अनुभव से लाभ उठाने के अतिरिक्त, शास्त्रार्थ में आर्यसमाज के मुख्य वक्ता के लिए श्री शास्त्री जी

शेष पृष्ठ ८ पर

ओ३म्

वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है। महर्षि दयानन्द

परमेष्ठी प्रजापतिः ऋषिः। **अग्निः = ईश्वरः देवता।** आर्चीत्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः।।

किंच तद्वाचो व्रतमित्युपदिश्यते।।

उस वाणी का क्या व्रत है, यह उपदेश किया है।

ओ३म् अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम्।
इदमहमनृतात् सत्यमुपैमि।।यजु०१।५।।

पदार्थ (**अग्ने**) हे सत्योपदेशकेश्वर! (**व्रतपते**) व्रताना = सत्यभाषणादीनां पतिः= पालकस्तत्संबुद्धौ (**व्रतम्**) सत्यभाषणं सत्यकरणं सत्यमानं च (**चरिष्यामि**) अनुष्ठास्यामि (**तत्**) व्रतमनुष्ठातुम् (**शकेयम्**) यथा समर्थो भवेयम् (**तत्**) तस्यानुष्ठानं पूर्तिश्च (**मे**) मम (**राध्यताम्**) संसेध्यताम् (**इदम्**) प्रत्यक्षमाचरितुं सत्यं व्रतम् (**अहम्**) धर्मादिपदार्थचतुष्टयं चिकीषुर्मनुष्यः (**अनृतात्**) न विद्यते ऋतं=यथार्थमाचरणं यस्मिन् तस्मान्मिथ्याभषणान् मिथ्याकरणान्मिथ्यामानात्पृथग्भूत्वा (**सत्यम्**) यद्वेदविद्यया प्रत्यक्षादिभिः प्रमाणैः सृष्टिक्रमेण विदुषां संगेन सुविचारेणात्मशुद्धया वा निर्भ्रमं सर्वहितं तत्वनिष्ठं सत्प्रभवं सम्यक् परीक्ष्य निश्चीयतें तत्। **सत्यं कस्मात् सत्सु तायते सत्प्रभवं भवतीति वा।। निरु० ३/१३।।(उपि)** क्रियार्थे (**एम**) ज्ञातुं प्राप्तुमनुष्ठातुं प्राप्नोमि।। **अयं मन्त्रः श. १। १। १। २-४ व्याख्यातः।।५।।**

प्रमाणार्थ (**सत्यम्**) निरुक्त (३। १३) में लिखा है कि सत्य का क्या अर्थ है? सज्जनों में विस्तीर्ण होता हे अथवा सज्जनों से ही जिसकी उत्पत्ति है, वह सत्य है। इस मन्त्र की व्याख्या शत. (१/१/१/२-४) में की है। १/५।।

सपदार्थान्वयः **हे व्रतपते!** व्रतानां= सत्यभाषणादीनां पतिः=पालकस्तत्सम्बुद्धौ **अग्ने!=सत्यधर्मोपदेशकेश्वर! अहं** धर्माऽऽदि-पदार्थचतुष्टयं चिकीर्षुर्मनुष्यो **यदिदं** प्रत्यक्षमाचरितुं सत्यं व्रतम् **अनृतात्** न विद्यते ऋतं=यथार्थमाचरणं यस्मिन् तस्मान्निथ्याभषणान्मिथ्याकरणान्मिथ्या-मानात् (पृथग्भूत्वा) **पृथग्वर्तमानं सत्यं** यद् वेदविद्यया, प्रत्यक्षादिभिः प्रमाणैः, सृष्टिक्रमेण, विदुषां संगेन सुविचारेणाऽऽत्मशुद्धया वा निर्भ्रमं सर्वहितं तत्वनिष्ठं सत्प्रभवं सम्यक् परीक्ष्य निश्चीयते तद् **व्रतं** सत्यभाषणं सत्यकरणं सत्यमानं च **आचरिष्यामि** अनुष्ठास्यामि। **तत् तस्यानुष्ठानं पूर्तिश्च** मे=मम भवता स्वकृपया राध्यताम्=**संसेध्यताम्, यद् उपैमि=प्राप्नोमि** ज्ञातुं प्राप्तुमनुष्ठातुं प्राप्नोमि **यच्चाऽनुष्ठातुं शकेयं** यथा समर्थो भवेयं, **तदपि सर्व राध्यताम्=संसेध्यताम्**।।१।५।।

भाषार्थ : हे (**व्रतपते!**) सत्यभाषणादि व्रतों के पालक! (**अग्ने!**) सत्य धर्म के उपदेशक ईश्वर! (**अहम्**) धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को प्राप्त करने की इच्छा वाला मैं जो (**इदम्**) इस सत्यव्रत को (**अनृतात्**) मिथ्याभषण, मिथ्या आचरण, मिथ्या बात को मानने

से अलग होकर **(सत्यम्)** जो वेद-विद्या, प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों, सृष्टिक्रम, विद्वानों का संग, श्रेष्ठ विचार और आत्म-शुद्धि के द्वारा जो भ्रान्ति से रहित, सबका हितकारक, तत्वनिष्ठ सत्प्रभव है और जो अच्छी प्रकार परीक्षा करके निश्चय किया जाता है, जो **(व्रतम्)** सत्यभाषण, सत्याचरण, सत्य मानना रूप व्रत है, उसका **(चरिष्यामि)** पालन करूँगा, **(तत् मे)** मेरे उस व्रत का अनुष्ठान और पूरा होना आपकी कृपा से **(राध्यताम्)** सिद्ध हो। जिसे **(उपैमि)** जानने, प्राप्त करने और आचरण में लाने के लिए **(शकेयम्)** समर्थ होऊँ, **(तत्)** वह व्रत भी सब आपकी कृपा से **(राध्यताम्)** सिद्ध होवे।। १। ५।।

भावार्थः ईश्वरेण सर्वमनुष्यैरनुष्ठेयोऽयं धर्म उपदिश्यते-यो न्यायः, पक्षपातरहितः सुपरीक्षितः, सत्यलक्षणान्वितः सर्वहिताय वर्तमान, ऐहिकपारमार्थिकसुखहेतुरस्ति स एव धर्मः सर्वमनुष्यैः सदाचरणीयः। यश्चैतस्माद् विरुद्धो ह्यधर्मः स नैव केनापि कदाचिदनुष्ठेयः। एवं हि सर्वैः प्रतिज्ञा कार्या-

हे परमेश्वर! वयं वेदेषु भवदुपदिष्टमिमं सत्यधर्ममाचरितुमिच्छामः। येयमस्कामिच्छा सा भवत्कृपया सम्यक् सिध्येत्।

यतो वयमर्थकाममोक्षफलानि प्राप्तुं शक्नुयाम, यथा चाधर्म सर्वथा त्यक्त्वाऽनर्थकुकामबन्ध दुःखफलानि पापानि त्यक्तुं त्याजयितुं च समर्था भवेम।

यथा भवान् सत्यव्रतपालकत्वाद् व्रतपतिर्वर्तते तथैव वयमपि भवत्कृपया स्वपुरुषार्थेन यथाशक्ति सत्यव्रत पालका भवेम।

एवं सदैव धर्म चिकीर्षवः सत्क्रियावन्तो भूत्वा सर्वसुखोपेताः सर्वप्राणिनां सुखकारकाश्च भूवेमेति सर्वैः सदैवेष्टितव्यम्।।

शतपथब्राह्मणेऽस्य मन्त्रस्य व्याख्यायामुक्तं-मनुष्याणां द्विविधमेवाचरणं सत्यमनृतं च, तत्र ये वाङ्मनःशरीरैः सत्यमेवाचरन्ति ते देवाः। ये चैवानृतमाचरन्ति ते मनुष्या अर्थादसुरराक्षसाः सन्तीति वेद्यम्।।१।५।।

भावार्थ ईश्वर सब मनुष्यों के पालन करने योग्य धर्म का उपदेश करता है-जो न्याय, पक्षपातरहित, सुपरीक्षित, सत्य लक्षणों से युक्त, सर्वहितकारी, इस लोक और परलोक के सुख का हेतु है, वही धर्म सब मनुष्यों के सदा आचरण करने योग्य है और जो इससे विरुद्ध अधर्म है, उसका आचरण कभी किसी को नहीं करना चाहिये। इस प्रकार सब प्रतिज्ञा करें।

हे परमेश्वर! हम वेदों में आप से उपदिष्ट इस सत्यधर्म का आचरण करना चाहते हैं। यह हमारी इच्छा आपकी कृपा से अच्छी प्रकार सिद्ध होवे।

जिससे-हम अर्थ, काम मोक्ष-रूप फलों को प्राप्त कर सकें और जिससे अधर्म को सर्वथा छोड़ कर अनर्थ, कुकाम, बन्धरूप दुःखफल वाले पापों को छोड़ने और छुड़ाने में समर्थ होवें।

जैसे आप सत्यव्रतों के पालक होने से व्रतपति हैं, वैसे ही हम भी आपकी कृपा से, अपने पुरुषार्थ से यथाशक्ति सत्यव्रत के पालक बनें।

इस प्रकार सदा धर्म करने के इच्छुक, शुभ कर्म करने वाले होकर सब सुखों से युक्त और सब प्राणियों को सुख देने वाले बनें। ऐसी इच्छा सब सदा किया करें।

शतपथ ब्राह्मण में इस मन्त्र की व्याख्या में कहा है- मनुष्यों का दो प्रकार का ही आचरण है एक सत्य और दूसरा अनृत। जो वाणी, मन और शरीर से सत्य का ही आचरण करते हैं, वे देव कहलाते हैं और जो मिथ्या आचरण करते हैं, वे मनुष्य अर्थात् असुर एवं राक्षस हैं।।१।५।।

❑❑

स्वतन्त्रता के मायने

(धर्मपाल आर्य)

हमारा देश अपना ७२वाँ स्वतन्त्रता दिवस बड़े हर्षोल्लास के साथ मना रहा है। भारत में ही नहीं, अपितु विदेशों में रहने वाले भारतीय भी इस राष्ट्रीय पर्व को पूरे हर्षोल्लास के साथ मनाते हैं। १५ अगस्त १९४७ को हमारा देश अनेक देशभक्तों, क्रान्तिकारियों और बलिदानियों के अमर बलिदानों के परिणामस्वरूप विदेशी दासता के बन्धन से मुक्त हुआ था। मैं अपने समस्त प्रबुद्ध पाठकों को स्वतन्त्रता दिवस और रक्षाबन्धन दोनों ही पावन पर्वों की हार्दिक शुभकामनाएं और बहुत२ बधाई देता हूँ।

स्वतन्त्रता जीवन है, पराधीनता मृत्यु है, स्वतन्त्रता वरदान है, परतन्त्रता अभिशाप है, स्वतन्त्रता आत्मनिर्भरता की अभिव्यक्ति है, परतन्त्रता विवशता और लाचारी का बन्धन है, स्वतन्त्रता लौकिक, अलौकिक सुखों का स्रोत है, पराधीनता दुःखों की अपरिवर्तनीय परिभाषा है, स्वतन्त्रता समृद्धि की प्रतीक है, परतन्त्रता दारिद्रय की द्योतक है। संभवतः यही कारण है कि देशभक्त बाल गंगाधर को कहना पड़ा - "स्वतन्त्रता मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है और मैं इसे लेकर रहूँगा।"

स्वतन्त्रता आध्यात्मिक, आधिदैविक तथा आधिभौतिक सुखों का प्रतिनिधित्व करती है जबकि **परतन्त्रता** आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक दुःखों का प्रतिनिधित्व करती है। महर्षि दयानन्द सरस्वती (जिन्हें मैं स्वतन्त्रता संग्राम का प्रथम पुरोधा कह सकता हूँ) ने स्वतन्त्रता का महत्व समझते हुए १८५७ से पूर्व ही समग्र स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए अघोषित आन्दोलन की नींव रख दी थी। ऋषिवर जनजागरण के अपने अभियान में निर्भीकता से घोषणा करते हुए कहते थे - **"विदेशी राज कितना ही अच्छा हो फिर भी स्वदेशी राज विदेशी की अपेक्षा श्रेष्ठ होता है, इसलिए ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि इस देश से विदेशी (अंग्रेजी) राज का खात्मा जितनी जल्दी हो उतना ही अच्छा है।"** मुझे यह लिखने में लेशमात्र भी संकोच नहीं है कि स्वतन्त्रता आन्दोलन की राह पर चलने वाले अधिकांश बलिदानी ऋषि दयानन्द से ही प्रेरित थे। ऋषिवर के अघोषित स्वतन्त्रता संग्राम के संघर्ष का क्रान्तिकारियों के हृदय पर इतना व्यापक प्रभाव था कि अपना जीवन और जवानी को हँसते-हँसते देश की स्वतन्त्रता के लिय आहुत कर दिया और बड़ी उमंग के साथ उमंग भरी पंक्तियों को बड़ी मस्ती से गाते-दोहराते हुए कामना करते थे-

"इलाही वह भी दिन होगा जब अपना राज देखेंगे।
अपनी ही जमीं होगी और अपना आसमां होगा।।
करता क्यों बगावत मैं यदि फांसी का डर होता।
चढ़ाता भेंट माता की यदि एक और सर होता।।
शहीदों की चिताओं पर लगेंगे हर बरस मेले।
वतन पर मरने वालों का यही बाकी निशां होगा।।
जिनकी रग में शोले हैं वे क्या जाने चिन्गारी को।
हथकड़ियों की जंजीरों को जेलों की चारदिवारी को।।

उपरोक्त पंक्तियाँ उन बलिदानियों के लिए प्रेरणा स्रोत थीं, इन्हीं पंक्तियों को गुनगुनाते हुए असंख्य क्रान्तिकारी देश के लिए अपना सर्वस्व न्यौछावर कर गए। इतिहास और इतिहासकार स्वतन्त्रता प्राप्ति में महर्षि के अमिट योगदान का उल्लेख करने में कितने निष्पक्ष रहे हैं, यह विश्लेषण करना यद्यपि मेरे लेखन का उद्देश्य नहीं है, फिर भी इतना अवश्य कहूँगा कि ऋषिवर के योगदान को या तो इतिहासकार समझ नहीं पाए या जानबूझकर उनके योगदान से आँखें फेरने की कोशिश की गई है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए समाज व राष्ट्र को जागरूक करने का सम्पूर्ण श्रेय महर्षि दयानन्द

व आर्यसमाज को जाता है।

आजादी मनुष्य मात्र को ही नहीं, अपितु प्राणिमात्र को प्रिय और अभीष्ट है और सभी इसे प्राप्त करने का प्रयास अपनी सामर्थ्यानुसार करते हैं। पराधीनता किसी भी जाति व राष्ट्र के लिए दुःखों और विपत्तियों का एक तरह से अन्तहीन दौर है। गोस्वामी तुलसीदास ने ठीक ही लिखा है -

पराधीन सपनेहु सुख नाहीं,
कर विचार देखो मन माहीं।

स्वतन्त्रता और परतन्त्रता किसे कहते हैं, इसको किसी संस्कृत साहित्यकार ने बड़े ही सटीक शब्दों में परिभाषित करने का प्रयास किया है। उनके अनुसार

सर्वमात्मवशं सुखं सर्वं परवशं दुःखम्।
एतद्विद्यात्समासेन लक्षणं सुखदुःखयोः।।

अर्थात् आत्मनिर्भरता ही स्वतन्त्रता तथा परनिर्भरता ही पराधीनता है और यही स्वाधीनता व पराधीनता संक्षेप में क्रमशः सुख-दुःख की भी परिभाषा समझी जानी चाहिए। स्वतन्त्रता छोटे को, बड़े को, अमीर को, गरीब को, स्त्री को, पुरुष को, युवाओं को, बुजुर्गों को, ब्रह्मचारी को, संन्यासी को, गृहस्थी को, वानप्रस्थी को, जलचर को, नभचर को और थलचर सभी को अभीष्ट है, क्योंकि बिना स्वतन्त्रता के जीवन की परिभाषा अधूरी है। उसको सम्पूर्णता स्वतंत्रता से ही मिलती है परन्तु इसके साथ ही विकृत मानसिकता वाली स्वतन्त्रता परतन्त्रता से भी अधिक खतरनाक है। मुझे यह बड़े खेद के साथ लिखना पड़ रहा है कि पिछले कुछ वर्षों में स्वतंत्रता को जिस तरह परिभाषित करने की कोशिश की गई, उसने स्वतन्त्रता की गरिमा को ठेस पहुँचाने का काम किया है। यदि कोई स्वतन्त्रता को संविधान की आड़ लेकर देश के खिलाफ प्रयोग करता है, तो स्वतन्त्रता देश व समाज के लिए परतन्त्रता से भी अधिक खतरनाक है। परन्तु दुर्भाग्य से ऐसा हुआ है और आज भी हो रहा है। स्वतन्त्रता की आड़ लेकर जे.एन.यू. में देशद्रोह के नारे लगाए गए और स्वतन्त्रता की आड़ लेकर जम्मू कश्मीर में पत्थरबाज सेना पर पत्थरबाजी करते हैं तथा अलगाववादी पाकिस्तान की कठपुतली बनकर खुलकर देशद्रोह का गन्दा खेल खेलते हैं। यदि स्वतन्त्रता का प्रयोग देश की एकता, अखण्डता तथा उसकी सांस्कृतिक विरासत के खिलाफ होता है तो यह स्वतन्त्रता नहीं अपितु स्वतन्त्रता के बहाने देशद्रोह हे और दुर्भाग्य से यह देशद्रोह देश के कुछ हिस्सों (जम्मू कश्मीर) में हो रहा है। ऐसी स्वतन्त्रता के जो पैरोकार हैं; राष्ट्रहित को ध्यान में रखते हुए उनके विरुद्ध कठोर से कठोरतम कार्यवाही की जानी चाहिए। ऐसी स्वतन्त्रता राष्ट्र का सबसे बड़ा अपमान है तथा ऐसी स्वतन्त्रता के पैरोकार देश और देश की एकता व अखण्डता के सबसे बड़े शत्रु तो हैं ही इसके साथ ही देश में अस्थिरता और अराजकता भी पैदा करने वाले हैं। यदि देश की स्वतंत्रता को, देश की एकता व अखण्डता को स्थिर व सुदृढ़ करना है, तो ऐसे आस्तीन के साँपों को मारने की नितान्त आवश्यकता है।

ऐसी स्वतन्त्रता जिसमें राष्ट्रद्रोह की गन्ध आती हो और ऐसी स्वतन्त्रता के जो राजनीतिज्ञ पैरोकार बनकर खड़े होते हों तो ऐसी आजादी देश के साथ विश्वासघात तो है ही साथ ही वो आजादी की आड़ में देश की सांस्कृतिक, भौगोलिक व राजनीतिक एकता और अखण्डता के विरुद्ध गहरा षड्यंत्र भी है और शहीदों की शहादत का सबसे बड़ा अपमान है। जो लोग स्वतन्त्रता को ढाल बनाकर राष्ट्र व समाजविरोधी अभियान को प्रचारित-प्रसारित करते हैं, ऐसे राष्ट्रद्रोही तत्व स्वतन्त्रता की गरिमा की तहस-नहस करने का कुत्सित प्रयास कर रहे हैं। मैं ऐसी स्वतन्त्रता को स्वतन्त्रता नहीं अपितु विश्वासघात भरी उद्दण्डता कहूँगा और इस प्रकार का राग अलापने वालों के लिए जब राजनीति शरणस्थली बन जाती है, तो मैं इसे देश का दुर्भाग्य ही कहूँगा। इससे भी अधिक दुर्भाग्य की बात यह है कि ऐसे तत्वों को कभी अभिव्यक्ति के वैधानिक अधिकार की आड़

लेकर तो कभी तथाकथित धर्मनिरपेक्षता की आड़ लेकर बचाने की युक्तियाँ ढूंढी जाती हैं, इनके समर्थक राजनीतिज्ञों द्वारा आम जनता की आँख में बड़ी चालाकी से धूल झोंकने का काम किया जाता है। महर्षि दयानन्द अनुशासित स्वतन्त्रता पर बल देते हैं; अनुशासित स्वतन्त्रता सर्वहितकारी है जबकि निरंकुश स्वतन्त्रता सर्व अहितकारी होती है। महर्षि आर्यसमाज के दसवें नियम में लिखते हैं -

"सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें।" अपने हित राष्ट्रहितों पर जब भारी पड़ने लगते हैं और राजनीतिज्ञ जब इस प्रकार के कारनामों से आंखें मूँदने लगते हैं, तो शहीदों के सपनों का स्वर्णिम भारत टुकड़े-टुकड़े होने लगता है, सामाजिक ताना-बाना ध्वस्त होने लगता है, मानवता स्वार्थी पञ्जों में फंसने लगती है, पारस्परिक भाईचारा तथा सामञ्जस्य लड़खड़ाने लगता है। हमारे असंख्यों अमर बलिदानियों के अमर व अमिट बलिदानों के परिणामस्वरूप हमें स्वतन्त्रता की स्वर्णिम सौगात प्राप्त हुई है। इसकी रक्षा करना हमारा उतना ही बड़ा दायित्व है, जितना बड़ा दायित्व क्रान्तिकारियों का इसे प्राप्त करने का था। इसको अखण्ड बनाए रखने का उत्तरदायित्व केवल किसी एक व्यक्ति, एक समाज, एक समुदाय, एक वर्ग, एक संगठन अथवा किसी एक जाति का नहीं, अपितु इसको सुरक्षित, सुदृढ़ रखने का दायित्व सभी व्यक्तियों , सभी समाजों , सभी समुदायों, सभी संगठनों, सभी वगो ं और सभी जातियों का सामूहिक उत्तरदायित्व है, जिसे पूरी निष्ठा और भक्ति से निभाने की परम आवश्यकता है। यह निर्विवाद सत्य है कि जैसे स्वाधीनता को पाने के लिए वीरों ने अपना सर्वस्व न्यौछावर कर दिया था, उसकी रक्षा के लिए भी बलिदान आवश्यक होता है। इस तथ्य को हमें भली भाँति समझ लेना चाहिए। पिछले कुछ वर्षों में स्वतन्त्रता को जिस प्रकार परिभाषित करने की कोशिश की गई उससे एक बार ऐसा लगा जैसे कि देशद्रोह और देशभक्ति के मध्य अन्तर ही समाप्त हो गया। जम्मू कशमीर के आतंकवादी और जे.एन.यू. में देश विरोधी नारे लगाने वाले भी कुछ लोगों की नजरों में देशभक्त थे।

७२वां स्वतन्त्रता दिवस हमें देशभक्ति की प्रेरणा के साथ-साथ आत्ममन्थन की प्रेरणा देता है, देशभक्ति और आत्ममन्थन की प्रेरणा को हम सब कितना आत्मसात् कर पाएं हैं अथवा कर पाएंगे, इस प्रश्न का उत्तर यद्यपि समग्रता से देना काफी कठिन है फिर भी इतना तो कहा ही जा सकता है कि हमारी आजादी को जितना खतरा पड़ोसी देश पाक द्वारा भेजे जा रहे आतंकवादियों से हैं उससे कहीं अधिक हमारे देश में पल रहे उन आस्तीन के सांपों से है जो खाते इस देश का हैं किन्तु पिट्ठू वे पाकिस्तान के हैं। इस देश की आजादी को खतरा इस देश में मौजूद उन तथाकथित व छद्म धर्मनिरपेक्षता के ठेकेदारों से है जो रात-दिन एक वर्ग विशेष को एक वर्ग विशेष के विरुद्ध उकसाने का काम करते हैं तथा उनका वोटबैंक खत्म न हो जाए इसी उधेड़बुन में रहते हुए ऐसे तत्व कई बार राष्ट्रविरोधी हरकतों का न केवल हिस्सा बन जाते हैं, अपितु उन्हें प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष हवा देने का भी काम करते हैं।

स्वतन्त्रता दिवस के इस पावन अवसर पर हम अपने असंख्यों हुतात्माओं को यह संकल्प लेकर सच्ची श्रद्धांजलि दें कि हमें पराधीनता की जंजीरों से मुक्त करने वाले तथा विदेशी दासता के बन्धनों को तोड़ने वाले वीरों ने जिस समृद्ध और शक्तिशाली भारत का सपना देखा था, हम उस भारत का निर्माण करने का सामूहिक प्रयास करेंगे। राष्ट्रविरोधी तत्वों को बेनकाब कर उन्हें उनके असली अंजाम तक पहुचाने का काम करेंगे। १५ अगस्त १९४७ को जब हमारे देश में प्रथम स्वतन्त्रता दिवस मनाया जा रहा था तो उस समय देश की राजनीति और राजनेता सबका एक ही उद्देश्य था कि अपने इस देश को सांस्कृतिक, आर्थिक, सामाजिक, और मानवतावादि गुणों से सुसमृद्ध राष्ट बनाएंगे तभी

शहीदों को सच्ची श्रद्धांजलि होगी।

आज जबकि हमें विदेशी दासता से मुक्त हुए ७२ वर्ष होने जा रहे हैं तो कई प्रश्न उत्तर के लिए मानो मुँह फैलाए खड़े हैं। १९४७ की राजनीति और राजनेताओं एवं आज की राजनीति और राजनेताओं के चरित्र में, सिद्धान्त में, चिन्तन में, राजनीतिक कौशल में और राजनीतिक इच्छाशक्ति में रात-दिन का अन्तर है। वर्तमान राजनीति में कई नकारात्मक पहलु जुड़े हुए हैं जिसके कारण कई बार इस देश की राजनीति विडम्बनाओं विद्रूपताओं और विषमताओं का पिटारा नजर आती है। हम अपनी स्वाधीनता को तभी दृढ़ता प्रदान कर पाएंगे जब हम राजनीतिक विडम्बनाओं, विद्रुपताओं और विषमताओं से बाहर निकलेंगे। स्वतन्त्रता दिवस हमारे लिए इसलिए भी महत्वपूर्ण है क्योंकि यह दिवस हमें बलिदानों की अतुलनीय व अगणनीय कीमत देने के बाद मिला है इसकी रक्षा के लिए भी यदि अतुलनीय व अगणनीय कीमत देनी पडे तो भी हमें इसके लिए सदैव तत्पर रहना चाहिए। जैसे उन वीरों ने आजादी लाने के लिए ऐतिहासिक बलिदान दिया, उसकी रक्षा के लिए ऐतिहासिक बलिदान कौन देगा, उत्तर सीधा सा है हम ही देंगे क्योंकि वेद ने कहा भी है- **''वयं तुभ्यं बलिहृतः स्याम''** अर्थात् हे मातृभूमे! आपकी रक्षा में हम बलिदान हो जाएँ।

अभी इन पंक्तियों को लिखते-2 भारत की अक्षुण्णता और अखण्डता को एक करने की बहुप्रतीक्षित सोच के चलते हमारी संसद में धारा 370 व धारा 35ए पर बहुत ही साहसिक कदम की घोषणा हुई है। मैं समस्त आर्य जनता की ओर से साहसी प्रधानमंत्री व दिलेर गृहमंत्री को हार्दिक साधुवाद देता हूँ

❑❑

पृष्ठ २ का शेष

का ही चयन किया गया था। परन्तु दुर्भाग्यवश शान्त वातावरण में शास्त्रार्थ करने का अवसर ही न आ पाया। तब अनेक मित्रों ने इच्छा प्रकट की, कि श्री शास्त्री जी मूर्तिपूजा अवैदिक है' इस सम्बन्ध में अपने विचार व्याख्यान द्वारा जनता तक पहुँचाने की कृपा करें। श्री शास्त्री जी सहर्ष उद्यत हो गये और उन्होंने अपने व्याख्यान का विषय रखा 'साकारवाद की अन्त्येष्टि।'

शास्त्री जी का स्थान आर्यसमाज के उच्च कोटि के व्याख्याताओं में हैं। उनके भाषण भाव और शैली दोनों दृष्टि से अत्यन्त प्रभावशाली होते हैं उनमें पाण्डित्य, तर्क, माधुर्य, मनोरंजन आदि प्रायः सभी गुणों का समावेश होता है। हमें शास्त्री जी के अनेक भाषण सुनने का सुअवसर मिला है। सम्भवतः ऐसा कभी नहीं हुआ कि भाषण को पूरा सुने बिना हम उठ आये हो। उनको सुनने की लालसा सदा बनी रहती है। **"क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः"** की कहावत उनके व्याख्यानों के बारे में पूर्णतया चरितार्थ होती है। परन्तु उस दिन शास्त्री जी का व्याख्यान अद्वितीय था। उस दिन उनकी भाषण कला का जो रूप हमने देखा, पहले कभी न देखा था। ऐसा पता लगता था कि उस दिन तो पांडित्य एवं वक्तृत्व दोनों ने मिलकर साक्षात रूप धारण कर लिया हो। नर-नारी उनके भाषण को मन्त्र मुग्ध होकर सुनते रहे और बीच-बीच में तथा अन्त में हुई करतल-ध्वनि से स्पष्ट ज्ञात होता था कि जनता ने भाषण को अत्यधिक पसन्द किया।

यह प्रसन्नता की बात है कि आर्य-समाज लल्लापुरा (वाराणसी) ने उस भाषण को ('पौराणिक आचार्यों दृष्टि में साकारवाद') प्रकाशित कराने का निश्चय किया है। इससे भाषण को स्थायी साहित्य में स्थान मिल जावेगा और वे सज्जन भी इससे लाभ उठा सकेंगे, जो भाषण के समय वहाँ उपस्थित न थे। इसमें कोई सन्देह नहीं कि पुस्तक सब प्रकार उपादेय है और पुस्तकालयों में स्थान पाने योग्य है। ज्ञान प्रकाश की वृद्धि में एक देदीप्यमान दीप शिखा दान के लिए हम शास्त्री जी को हार्दिक बधाई देते हैं।

❑❑

सांख्य में योग के अष्टांग

(उत्तरा नेरूरकर, मो. ९८४५०५८३१०)

अनेक विद्वानों यह धारणा बनी हुई है कि सांख्यदर्शन और योगदर्शन कुछ भिन्न मत प्रस्तुत करते हैं, परन्तु यह धारणा सही नहीं है। जबकि अवश्य ही सांख्य का विषयक्षेत्र योग से कुछ भिन्न है, तथापि उनमें कहीं वैपरीत्य नहीं है; प्रत्युत मतसामय के कारण इन दोनों दर्शनशस्त्रों को 'योग-सांख्य' जोड़े के रूप में भी कहा जाता है। कभी-कभी कुछ निरूपण में अन्तर होने के कारण, अथवा किसी तथ्य को जोड़ने या घटाने के कारण ऐसा प्रतीत होता है कि किन्हीं दो ग्रन्थों में भेद है, परन्तु यह केवल विवक्षा में भेद होता है, तथ्य में नहीं। जिस प्रकार दो वक्ता किसी एक विषय को अलग-अलग ढंग से प्रस्तुत करते हैं, उसी प्रकार ग्रन्थों में भी समझना चाहिए। इस लेख में मैं कपिल मुनि के सांख्यदर्शन में किस प्रकार, भिन्न प्रतीत हुए भी, महर्षि पतंजलि प्रणीत योगदर्शन के अष्टांग प्रस्तुत किए गए है, यह दर्शा रही हूं।

योगदर्शन के अष्टांग मुमुक्षु साधक को अपने लक्ष्य तक पहुंचने के सोपान देते हैं, और साधरण जन को धार्मिक जीवन जीने की कुछ कडियां देते हैं, चाहे वह उस उपदेश का पूर्णता से निर्वाह न भी कर पाए। पतंजलि ने इन्हें इस प्रका सूत्रित किया है-

यमनियमासनप्राणायमप्रत्याहारधारणा-ध्यानसामधयोऽष्टावङ्गानि।

।योगदर्शनम्२।२९।।

अर्थात् आत्मयोग व परमात्मयोग के क्रमशः आठ अंग हैं- यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान व समाधि। इनमें यम आत्मिक नियन्त्रण को कहते हैं। नियम दैनिक कर्तव्य बताते हैं, आसन ध्यान के लिए सरलता से बैठने को , प्राणायम श्वास-प्रश्वास को सूक्ष्म व दीर्घ करने की प्रक्रिया को और प्रत्याहार इन्द्रियों को वश में रखने को कहते हैं, व धारणा, ध्यान, समाधि ध्यान के उत्तरोत्तर स्तर हैं। संक्षेप में, ये आत्मयोग के लिए- अपने स्वरूप को जानने के लिए- आत्मोन्नति के सोपान हैं। पतंजलि स्वयं कहते हैं-

योगांगानुष्ठानादशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिराविवेकख्यातेः ।।योग० २।२८।।

अर्थात् योगांगों के अनुष्ठान से आत्मिक व शारीरिक अशुद्धियों का नाश होता है और विवेकख्याति अविद्या के सम्पूर्ण नाश पर्यन्त ज्ञान का प्रकाश बढता जाता है। विवेकख्याति प्राप्त करने पर जीवात्मा मोक्ष का भागी हो जाता है, उसको उसका सर्वोत्तम लक्ष्य मिल जाता है।

सांख्य भी मोक्ष-प्राप्ति के सोपानों का वर्णन करता है। वे इस प्रकार हैं-

रागोपहतिर्ध्यानम् ।।सांख्यदर्शनम् ३।३०।।

अर्थात् ध्यान द्वारा सब राग नष्ट हो जाते हैं। राग यहां सभी क्लेशों का उपलक्षण है (इन क्लेशों का विवरण मैंने आगे दिया है)।

वृत्तिनिरोधात् तत्सिद्धिः ।। सांख्य० ३।३१।।

अर्थात् चित्त की वृत्तियों के निरोध से ध्यान की सिद्धि होती है। यहां शंका की जाती है कि महर्षि पतंजलि ने तो चित्तवृत्तियों के निरोध को 'योग' कहा है- **योगश्चितवृत्तिनिरोधः ।।१।२।।,** परन्तु महर्षि कपिल ने उसको 'ध्यान' कहा है। दूसरी ओर पतंजलि ने 'ध्यान' को समाधि प्राप्त करने की दूसरी अवस्था बताई है धारणा उनमें पहली है और समाधि तीसरी। ऊपर से कपिल ने इसे 'रोगोपहति कहा है, न कि 'योग'। तो भला ये दोनों एक बात कैसे कह रहे हो सकते हैं? यदि हम सांख्य आगे पढें, तो और भी संशय उत्पन्न होते हैं, जैसे कि-

धारणासनस्वकर्मणा तत्सिद्धिः।।

सांख्य ३।३२।।

अर्थात् वृत्तिनिरोध धारणा, आसन व स्वकर्म से सिद्ध होता है, जबकि पतंजलि ने उपर्युक्त अष्टांगों का निर्देश किया है। धारणा और आसन उन अंगों के भाग

तो हैं, परन्तु स्वकर्म तो नहीं है! कपिल का उपदेश समझने के लिए, आगे दिए गए इन तीन शब्दों के अर्थ पहले देखते हैं-

निरोधश्छर्दिविधारणाभ्याम् ।।सांख्य ३।३३।।

स्थिरसुखमासनम्।।सांख्य० ३।३४।।

स्वकर्म स्वाश्रमविहितकर्मानुष्ठानम्।। सांख्य० ३।३५।।

जबकि यहां पहला सूत्र कहता है कि प्राणों को बाहर फेंकने रेचक और रोकने कुम्भक से 'निरोध' उत्पन्न होता है, बाकी दो सूत्र क्योंकि आसन और स्वकर्म निरूपित करते हैं, इसलिए यह मानना उपयुक्त है कि इस सूत्र में 'निरोध' से 'धारणा' का ग्रहण करना है। इस शब्दसंकर से यह ज्ञात होता है कि कपिल के लिए ये शब्द उस रूप में पारिभाषिक नहीं थे, जिस रूप में वे पतंजलि के लिए थे। यह स्वाभाविक भी है क्योकि सांख्य में समाधि-विषय प्रधान नहीं है, अपितु सृष्टि में तीन तत्वों- परमात्मा, जीवात्मा व प्रकृति - की सिद्धि, प्रकृति से सृष्टि व शरीर संरचना, उस शरीर से जीवात्मा का मुक्त हो सकना, आदि विषय अधिक प्रधान हैं। इन अन्तिम विषयों का उल्लेख योगदर्शन में भी पाया जाता है, और वहां हम पाते हैं कि सांख्य के पारिभाषिक शब्द उधर अस्पष्ट हैं, यथा-

प्रकाशक्रियास्थितिशीलं भूतेन्द्रियात्मकं भोगापवर्गार्थं दृश्यम् ।।योग० २।१८।।

अर्थात् दृश्य (संसार) भोग और अपवर्ग के लिए है और भूतों और इन्द्रियों में बंटा है। यहां न तो भूतों की गणना की गई है, न इन्द्रियों की, न प्रकृति के सूक्ष्म विकार बुद्धि, मन, अहंकार, आदि का वर्णन है, जिस प्रकार सांख्य में विस्तार से और उत्पत्ति-सहित दिया गया है। यह भी इसीलिए है कि सृष्ट्युत्पत्ति योगदर्शन का मुख्य विषय नहीं है। तथापि सारे सूत्रों को जोडने के लिए उन सूत्रों का भी उल्लेख करना पडता है जो कि ग्रन्थ के मुख्य विषय नहीं है।

जब हम ऐसा समझकर सांख्य के उपर्युक्त सूत्र पढते हैं, तो अनायास हमें उनका योगदर्शन से साम्य दिखने लगता है। सो, कपिल ने 'ध्यान' शब्द से योग के 'समाधि' अर्थ का ग्रहण किया है, जिसे पतंजलि द्वारा 'योग' भी कहा गया है विवेकख्यातिरविप्लवा हानोपायः।। योग० २।२६।। **प्रसंगख्याने५प्यकुसीदस्य सर्वथा विवेकख्यातेर्धर्ममेघः समाधिः।।**

योग० ४।२९।।।

आगे, 'धारणा' शब्द से उनका वही अर्थ है जो योगदर्शन में धारणा और ध्यान प्रक्रियाओं में निहित है।। इस प्रकार कपिल ने भी धारणा और ध्यान समाधि के प्रारम्भिक स्तर माने हैं।

और जो कपिल ने प्राणों की क्रिया का उल्लेख किया हैं, वह भी योगदर्शन में प्राप्त होती है-

प्रच्छर्दनविधारणभ्यां वा प्राणस्य ।।योग० १।३४।। अनुवृत्तिः - चित्तप्रसादनम्।।

जबकि योग के 'प्रच्छर्दन' और सांख्य के 'छर्दि' पदों के अर्थों में कुछ भी भेद नहीं है, तथापि, पतंजलि ने यह प्रक्रिया केवल चित्त को शान्त करने के प्रकरण में लिखी हैं, परन्तु वसतुतः वहां भी सन्दर्भ धारणा व ध्यान का ही है, जिसको वे आगे सामाधि के वर्णन की ओर ले जाते है। फिर भी, आगे अष्टांगों के वर्णन में पतंजलि प्राणयाम का और विस्तार से वर्णन करते हैं। इससे यह समझना चाहिए कि सांख्य के सूत्र में भी छर्दि व विधारणा से अष्टांगों के प्राण्पाायाम का ग्रहण ही है।

सांख्य का अगला, आसन-विषयक सूत्र तो योग० २।४६ की प्रतिकृति ही है।

अब आता है **'स्वकर्म'**। कपिल कहते हैं कि यह अपने आश्रम के लिए विहित कर्म का करना है। इसे तो पतंजलि ने कहीं कहा ही नहीं! पतंजलि ने तो यम और निय की बात की है, जहां यम (अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य अपिरिग्रह) इन्द्रियों की वशीकरण से सम्बद्ध हैं, और नियम (शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वरप्रणिधान) दैनिक कर्तव्यों का निर्धारण करते हैं। परन्तु आश्रमविशिष्ट कर्मों के विषय में तो पतंजलि ने कुछ कहा ही नहीं है! वस्तुतः, पतंजलि ने इनको गौण मानके, उनका स्पष्ट उल्लेख नहीं किया हैं, परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि पतंजलि के मत में आश्रमविशिष्ट कामों का करना निरर्थक है, बस अपने ग्रन्थ में उन्होंने उन कर्तव्यों को प्रसिद्ध मानकर उनको नहीं गिनाया। यही पद्धति आज भी ग्रन्थों में पाई जाती है- जीव विज्ञान में भौतिक और

"वेदों का प्रवेश द्वार ऋषि दयानन्द का ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका ग्रन्थ"

(मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून, मो. ०९४१२९८५१२१)

वेदों का महत्व मनुष्य जीवन के लिये सर्वधिक है। वेद परमात्मा की शाश्वत् वाणी है। यह वाणी ज्ञानयुक्त वाणी है जो मनुष्य जीवन की सर्वांगीण उन्नति का मार्गदर्शन करती है। वेदों के मर्मज्ञ विद्वान् ऋषि दयानन्द ने कहा है कि वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है और इसका पढ़ना-पढ़ाना तथा सुनना व सुनाना सब आर्यों का परम-धर्म है। वेदों का अध्ययन करने से मनुष्य की नास्तिकता दूर होती है। वेदाध्ययन से यह एक प्रमुख लाभ होता है वेदों का अध्ययन करने से ईश्वर व आत्मा सहित प्रकृति के सत्यस्वरूप का ज्ञान भी होता है। यह ज्ञान मत-मतान्तरों के ग्रन्थों व इतर साहित्य को पढ़ने से नहीं होता वेद संसार का सबसे प्राचीन ग्रन्थ है। परमात्मा ने वेदों का ज्ञान अमैथुनी सृष्टि के आदि में प्रदान किया था। सृष्टि को बने व मानव उत्पत्ति को १.९३ अरब वर्षों से अधिक समय हो चुका है। इतना पुराना ज्ञान हमें पूर्ण सुरक्षित रूप में प्राप्त हुआ है, इसके लिये हम ईश्वर, ऋषियों व वेदपाठी ब्राह्मणों के आभारी हैं। ईश्वर की इस देन के लिये उसका कोटिशः धन्यवाद है। ऋषि दयानन्द (१८२५-१८८३) के समय में वेद विलुप्त हो चुके थे। वेदों के सत्य अर्थों का किसी विद्वान् को निश्चयात्मक ज्ञान नहीं था। उनके पूर्ववर्ती किसी आचार्य के वेद के सत्य अर्थों से युक्त ग्रन्थ भी कहीं उपलब्ध नहीं होते थे। संस्कृत के कुछ व्याकरण ग्रन्थ उपलब्ध थे। ऋषि दयानन्द ने इन वेदांगों के अध्ययन सहित अपनी योग व समाधि से प्राप्त शक्तियों के आधार पर वेदों के प्रत्येक मन्त्र के अर्थ को समझा था और उस ज्ञान में विद्यमान दिव्यता एवं सृष्टि में घट रहे ज्ञान व विज्ञान के उसके सर्वथा अनुकूल पाकर उस वेदज्ञान का अपने विद्यागुरु की आज्ञा व प्रेरणा से देश व समाज में प्रचार किया। ऋषि दयानन्द ने सायण एवं महीधर के वेदभाष्य का अध्ययन कर उनके मिथ्यार्थों का भी अनुसंधान किया था और प्राचीन ऋषि परम्परा के अन्तर्गत महर्षि यास्क, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद आदि ग्रन्थों के अनुरूप वेदमन्त्रों के यथार्थ अर्थ किये थे। वेदों का अध्ययन मनुष्य के आध्यात्मिक एवं सामाजिक ज्ञान सहित सभी प्रकार के ज्ञान में वृद्धि करता है। जिन व्यक्तियों को महर्षि दयानन्द के वेदों के पोषक सत्यार्थप्रकाश, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, संस्कारविधि, आर्याभिविनय आदि ग्रन्थों को देखने व अध्ययन करने का अवसर मिला है वह वस्तुतः सौभाग्यशाली हैं। हम समझते हैं कि ऐसा करने से उनका इहलोक एवं परलोक दोनों सुधरे हैं। जिन बन्धुओं को वेद पढ़ने का अवसर नहीं मिला है वह वेदों की भूमिकास्वरूप ऋषिप्रणीत सत्यार्थप्रकाश, ऋगवेदादिभाष्यभूमिका, संस्कारविधि एवं आर्याभिविनय आदि का अध्ययन कर उनके वेदभाष्य का अध्ययन करें तो उन्हें वेदार्थ का बोध हो सकता है। इससे वेदाध्यायी की अविद्या का नाश होकर विद्या का लाभ प्राप्त होगा। जिस प्रकार किसी पदार्थ का स्वाद उसे खाकर व चखने पर ही ज्ञात होता है इसी प्रकार वेदों का महत्व व लाभ वेदों का अध्ययन कर ही जाना व अनुभव किया जा सकता है।

महर्षि दयानन्द अपने विद्या गुरु विरजानन्द सरस्वती, मथुरा से विद्या प्राप्त कर उनकी प्रेरणा से अज्ञान के निवारण एवं ज्ञान के प्रसार के कार्य में प्रवृत्त हुए थे। उनके गुरु ने उन्हें बताया था कि संसार में अल्पज्ञ मनुष्यों द्वारा रचित ग्रन्थ अविद्या से युक्त हैं तथा पूर्ण विद्वान् योगी व ऋषियों के वेदानुकूल ग्रन्थ ही निर्दोष एवं पठनीय हैं। अतः वेदाध्ययन में सहायकता के लिये ही ऋषि ने पहले सत्यार्थप्रकाश ग्रन्थ लिखा और वेदभाष्य के कार्य में प्रवृत्त होने के अवसर पर उन्होंने चारों वेदों की भूमिका के रूप में 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' ग्रन्थ की

रचना की। यह ग्रन्थ वर्तमान में आसानी से सुलभ हो जाता है। वेदों पर इतना महत्वपूर्ण ग्रन्थ इससे पूर्व कहीं किसी ने नहीं लिखा। जर्मन मूल के विदेशी विद्वान् प्रो. फ्रेडरिच मैक्समूलर ने भी ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका का अध्ययन करने के बाद लिखा कि वैदिक साहित्य का आरम्भ ऋग्वेद से होता है और ऋषि दयानन्द की ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका पर समाप्त होता है। यह ऋषि दयानन्द की विद्या का जादू है जो प्रो. मैक्समूलर के सिर पर चढ़कर बोला है। हमें ऋषि के ग्रन्थों को पढ़ने का अवसर मिला है। अपने अल्प ज्ञान के आधार पर हमें लगता है कि ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका का अध्ययन कर लेने पर मनुष्य वेद विषयक प्रायः सभी मान्यताओं एवं सिद्धान्तों से परिचित हो जाता है। इसके बाद वेद का अध्ययन एक प्रकार से भूमिका ग्रन्थ में दिए गये वैदिक सिद्धान्तों की व्याख्या है। हम जितना अधिक भूमिका ग्रन्थ का अध्ययन करेंगे उतना ही ईश्वर व आत्मा के विषय में हमारे ज्ञान में वृद्धि होगी और हमारी अविद्या दूर होगी। हमें भूमिका ग्रन्थ के अध्ययन से ईश्वरोपासना की प्रेरणा मिलेगा और इसके साथ ही वेदाध्ययन की प्रवृत्ति उत्पन्न होकर वेदानुसार आचरण करने का स्वभाव भी स्वतः बनेगा। ऋषि दयानन्द सहित उनके सभी प्रमुख शिष्यों स्वामी श्रद्धानन्द, पं. लेखराम, पं. गुरुदत्त विद्यार्थी, महात्मा हंसराज, स्वामी दर्शनानन्द, पं. चमूपति जी आदि सभी ने वेदाध्ययन किया और इसके परिणामस्वरूप उनका आचरण व स्वभाव वेदानुकूल बना। इसे ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों के अध्ययन का प्रभाव कहा जा सकता है।

ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका वेदाध्ययन में प्रवेश का द्वार है। इसका कारण यह है कि ऋषि दयानन्द वेदों के मर्मज्ञ विद्वान् थे। उन्होंने चारों वेदों का सार अपने इस ग्रन्थ में प्रस्तुत किया है। हमें इस ग्रन्थ का सबसे बड़ा महत्व इसका हिन्दी व संस्कृत दोनों भाषाओं में रचा जाना भी लगता है। ऋषि के शब्दों को पढ़कर हमारा सम्बन्ध सीधा ऋषि की आत्मा से निकले शब्दों व साक्षात् उनकी आत्मा से हो जाता है। यद्यपि आज ऋषि हमारे सम्मुख व निकट अपनी आत्मा व साक्षात् रूप में विद्यमान नहीं है परन्तु उनके ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका आदि ग्रन्थों को पढ़े हुए हमें उनके सान्निध्य के अनुभव की प्रतीती होती है जो अत्यन्त सुखद एवं तृप्तिदायक होती है। वह लोग निश्चय ही भाग्यशाली है जो नित्यप्रति ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों का अध्ययन करते हैं। इससे उनका ऋषि दयानन्द के साथ सत्संग हो जाता है और इसका लाभी भी निःसन्देह ज्ञानवृद्धि सहित जीवन के लक्ष्य मोक्ष प्रप्ति कराने में सहायक होता है। यह साधारण बात नहीं है।

ऋषि दयानन्द ने वेदों को सभी सत्य विद्याओं का भण्डार कहा है। ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका ग्रन्थ की रचना करते समय उन्हें इस बात का ध्यान रहा है कि इस ग्रन्थ से वेद विषयक इस मान्यता का पोषण होना चाहिये। अतः उन्होंने निम्न विषयों पर वेदों की मान्यताओं एवं सिद्धान्तों के वेदमन्त्रों को प्रस्तुत कर उनका सत्यार्थ प्रस्तुत किया है। ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में सम्मिलित किये गये विषय निम्न हैं

१. ईश्वर प्रार्थना विषय २. वेदोत्पत्ति विषय ३. वेदाना नित्यत्व विचारः ४. वेद विषय विचार ५. वेद संज्ञा विचार ६. ब्रह्मविद्या विषय ७. वेदोक्त धर्म विषय ८. सृष्टि विद्वा विषय ९. पृथिव्यादि लोक भ्रमण विषय १०. आकर्षण अनुकर्षण विषय ११. प्रकाश्यप्रकाशक विषय १२. गणित विद्या विषय १३. ईश्वर स्तुति प्रार्थना याचना-समर्पण विषय १४. उपासना विषय १५. मुक्ति विषय १६. नौ विमान आदि विद्या विषय १७. तार विद्या का मूल १८. वैद्यकशास्त्रमूलोद्देशः १९. पुनर्जन्म विषय २०. विवाह विषय २१. नियोग विषय २२. राज-प्रजा-धर्म विषय २३. वर्णाश्रम विषय २४. पंचमहायज्ञ विषय २५. ग्रन्थ प्रामाण्य अप्रमाण्य विषय २६. अधिकार अनाधिकार विषय २७. पठन पाठन विषय २८. वेदभाष्यकरण शंका समाधान आदि विषय २९. प्रतिज्ञा विषय ३०. प्रश्नोत्तर विषय ३१. वैदिक प्रयोग विषय ३२. स्वर व्यवस्था विषय ३३. वैदिक व्याकरण नियम ३४. अलंकार भेद विषय ३५. ग्रन्थ संकेत विषय।

वेदों के माध्यम से ईश्वर ने सृष्टि के आरम्भ में जो ज्ञान दिया है वह मन्त्रों के रूप में है। मन्त्र

शब्द-वाक्यरूपों में है। यह ज्ञान अधिकांश पद्यमय है। वेदों का भाष्य करते हुए ऋषि दयानन्द जी ने वेदों के मन्त्रों व पद्यों के पदों का सन्धि-विच्छेद कर शब्दों को क्रम से अन्वय वा व्यवस्थित कर उनके पदों व शब्दों का संस्कृत व हिन्दी में अर्थ दिया हैं इसके साथ ही मन्त्र का भावार्थ भी दिया गया है। इन्हें पढ़कर मन्त्र में ईश्वर के सन्देश को जाना जा सकता है। ऋषि दयानन्द ने चारों वेदों के लगभग २०,५०० मन्त्रों का अध्ययन कर व उनके अर्थों को जानकर ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका ग्रन्थ की रचना की है। यह एक असम्भव सा कार्य था जिसे ऋषि दयानन्द ने अपने वैदुष्य एवं योग बल से सम्भव कर दिखाया। हमारा सौभाग्य है कि हमें ऋषि दयानन्द के किये भाष्य सहित अवशिष्ट भाग परउनके मार्गानुगामी आर्य विद्वानों के भाष्य सुलभ हैं जिनके द्वारा हम वेदों के पदार्थ व शब्दाश्र सहित मन्त्रों के भावार्थ को भी जान सकते हैं।

ऋषि दयानन्द के साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान् पं. युधिष्ठिर मीमांसक जी ने ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका का महत्व बताते हुए लिखा है- 'ऋषि दयानन्द सरस्वती के समस्त ग्रन्थों में ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका का महत्व सब से अधिक है, क्योंकि इस ग्रन्थ में ऋषि दयानन्द ने वेद के उन महत्वपूण्र सिद्धान्तों और वेदार्थ की प्रक्रिया की व्याख्या की है, जिस पर ऋषि दयानन्द कृत वेदभाष्य आधृत है। इतना ही नहीं, वेद के प्राचीन व्याख्यानरूप ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् के तत्वों को वास्तविक रूप में समझने का भी यही एकमात्र साधन है।'

पं० युधिष्ठिर मीमांसक जी ने ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका की रचना पर भी प्रकाश डाला है। वह लिखते हैं कि 'ऋषि दयानन्द ने भाद्र शुक्ला १ वि. सं. १९३३ (२० अगस्त १८७६) से वेदभाष्य की नियमित रूप से रचना आरम्भ की, और साक्षात् वेदभाष्य बनाने से पूर्व वेद और उसके भाष्य के सम्बन्ध में जो आवश्यक जानकारी देना अपेक्षित थी, उसके लिये ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका नाम की भूमिका लिखनी आरम्भ की। इस भूमिका की पाण्डुलिपि लिखनी आरम्भ की। इस भूमिका की पाण्डुलिपि (रफ) कॉपी लगभग तीन मास में पूर्ण हो गई, परन्तु उसके पीछे कई मास इसी भूमिका परिवर्धन व परिष्करण में लग गए। ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका की महत्ता को ध्यान में रखकर ऋषि दयानन्द ने इसमें कई बार परिवर्धन वा परिष्करण किए। परोपकारिणी सभा के संग्रह में भूमिका के ६ हस्तलेख विद्यमान हैं, जो उत्तरोत्तर परिष्कृत वा परिवर्धित हुए हैं। अन्तिम परिष्कृत हस्तलेख का आरम्भ विक्रमी सम्वत् १९३३ के फाल्गुन के पूर्वार्ध में हुआ, ऐसा ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के निम्न वचन से ज्ञात होता है

जैसे विक्रम संवत् १९३३ फाल्गुन मास, कृष्ण पक्ष, षष्ठी, शनिवार के दिन के चतुर्थ प्रहर के प्रारम्भ में यह बात हमने लिखी। ऋभाभू. पृष्ठ २८ (रामलाल कपूर न्यास द्वारा प्रकाशित आर्यसमाज स्थापना शताब्दी संस्करण)

वेद ईश्वर प्रदत्त ज्ञान है। वेद मन्त्र, छन्द व स्वरों में बद्ध हैं। ऋषियों ने सभी वेद मन्त्रों के देवता व ऋषि भी निश्चिम किये थे जो अद्यावधि लिखे जाने की परम्परा है। वेदों मन्त्रों के सत्यार्थ मन्त्र भाष्य के रूप में ऋषि दयानन्द के जीवनकाल में उपलब्ध नहीं थे। इसके विपरीत सायण एवं महीधरा के जो वेदार्थ थे वह अशुद्ध व दूषित थे, जिसका उल्लेख ऋषि दयानन्द ने सोदाहरण प्रस्तुत किया है। इसी कारण ऋषि को वेदों के सत्यार्थ को प्रस्तुत करने के लिये वेदभाष्य करने की योजना बनानी पड़ी जिसके लिये उन्होंने प्रथम ऋग्वेदादिभाष्यभूकिा ग्रन्थ की रचना की थी जिससे उनके वेदभाष्य के पाठकों को वेदार्थ समझने में सुविधा हो। ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका वेदों पर लिखा गया एक अत्यन्त महत्वपूर्ण ग्रन्थ हैं। ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका को पढ़े बिना ऋषि के वेदभाष्य से भी वह लाभ नहीं होता जो कि भूमिका को पढ़ने के बाद होता है। सभी वेदज्ञान पिपासुओं को ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका का अध्ययन अवश्य करना चाहिये। इससे वे वेदों में क्या है, इस प्रश्न के उत्तर सहित वेदों की वर्णन शैलियों को भली प्रकार से समझ सकेंगे। ओ३म् शम्।

❑❑

श्रीराम प्रजा को सत्य से जीतते थे

(कृष्णचन्द गर्ग, पंचकूला, दूर. ०१७२-४०१०६७६)

वाल्मीकि रामायण से-

श्री राम प्रजा को सत्य से, दीनों को दान से, गुरुओं को सेवा से ओर युद्ध में शत्रुओं को धनुष के द्वारा जीतते थे। (अयोध्या काण्ड ११-१६)

राम का जाबालि को उपदेश-

१. ऋषि और विद्वान लोग सत्य को ही उत्कृष्ट मानते हैं क्योंकि सत्यवादी पुरुष ही इस संसार में अक्षय मोक्ष सुख को प्राप्त करता है। (अयोध्या काण्ड ७७-१६)

२. मिथ्यावादी पुरुष से लोग वैसे ही डरते हैं जैसे सांप से। संसार में सत्य ही सबसे प्रधान धर्म माना गया हैं स्वर्ग प्राप्ति का मूल साधन भी सत्य ही है। (अयोध्या काण्ड ७७-२०)

३. संसार में सत्य ही सुख-शान्ति एवं ऐश्वर्य का मूल है। संसार में सत्य से बढ़कर और कोई वस्तु नहीं है। (अयोध्या काण्ड ७७-२१)

४. राज्य, कीर्ति, यश और लक्ष्मी ही नहीं, अपितु स्वर्ग भी सत्यवादी पुरुष को ही प्राप्त होता है। अतः मनुष्य को सदा सत्य ही बोलना चाहिए। (अयोध्या काण्ड ७७-२६)

यत्र धर्मो हि अधर्मेण सत्य यत्र अनृतेन च।
हन्यते प्रेक्षमाणानां हताः तत्र सभासदः।।

(मनुस्मृति ८-१४)

अर्थ- जिस सभा में बैठे हुए सभासदों के सामने अधर्म से धर्म का और झूठ से सत्य का हनन होता है, उस सभा के सभासद मरे हुओं के समान ही हैं।

सत्यमेव जयते नानृतं, सत्येन पन्था विततो देवयानः। (मुण्डकोपनिषद)

अर्थ- सत्य पक्ष की ही जीत होती है, झूठ की नहीं। सत्य के मार्ग पर चलकर ही मनुष्य देवता बनता है।

महर्षि मनु द्वारा लिखित मनुस्मृति के पाँचवें अध्याय का श्लोक है-

अद्भिर्गात्राणि शुद्धयन्ति मनः सत्येन शुद्धयति।

अर्थ- (शुद्ध) पानी से शरीर शुद्ध होता है और मन सत्य के आचरण से शुद्ध होता है।

जो लोग समझते हैं कि किसी नदी या तालाब में डुबकी लगाने से पाप धुल जाते हैं और जो लोग व्यवहार में झूठ का सहारा लेते हैं उनके लिए महर्षि मनु का यह उपदेश है। सत्य आचरण का अर्थ है जैसा मन में हो वही बोले और उसके अनुसार ही काम करे। झूठ से तो मन मलीन ही होता है।

और भी -

नासौ धर्मो यत्र न सत्यम् अस्ति। न तत् सत्यम् यत् छलेनाभ्युपेतम्।।

(महाभारत, उद्योगपर्व, विदुरनीति ३-५८)

अर्थ जहां सत्य नहीं वह धर्म नहीं ओर जिसमें छल-कपट है वह सत्य नही है।

वेद ने तो व्रत करने का ढंग भी यह बताया है कि सत्य का आचरण करने की प्रतिज्ञा करो।

अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम्।

इदम् अहम् अनृतात् सत्यम् उपैमि।। (यजुर्वेद १-५)

अर्थ- हे ज्ञानस्वरूप, सब व्रतों के पालक प्रभु! मैं यह व्रत करता हूँ कि असत्य के आचरण को छोड़कर सत्य का आचरण अपनाऊँ। आपकी कृपा से मेरा यह व्रत पूर्ण हो, सफल हो।

काश! हमारे हिन्दू राजनेता भी सत्य को अपनाते और जनता के सामने सत्य ही परोसते।

❑❑

ऐसा क्या लिखा सावरकर ने?

(राजेशार्य आट्टा, मो. ०९९९१२९९३१८)

प्रिय पाठकवृन्द! आजादी के दीवाने पं० रामप्रसाद बिस्मिल, अशफाक उल्ला आदि क्रांतिकारियों ने काकोरी में रेल अंग्रेजों की लूटी थी। वह धन जिसे उन्होंने लूटा था छीना था, हमारा ही था और अंग्रेज हमारा धन लूट रहे थे। उस लूट को क्रांतिकारियों ने छीना था, ताकि वह देश के काम आ सके। क्या ऐसे लोगों को हमें लुटेरा कहना चाहिए? फिर भी यदि कोई कृतघ्न अंग्रेजों की भाषा बोले, तो उसे मानसिक रोगी ही कहा जा सकता है।

वीर सावरकर अपने जन्मसिद्ध अधिकार स्वतंत्रता को पाने के लिए अंग्रेजों से लडे, तो अंग्रेजों ने उन राजनैतिक लोगों को बन्दी बनाकर उनपर पेशेवर अपराधियों डाकु व हत्यारों से भी अधिक अत्याचार किये थे और उन्हें मूलभूत सुविधाओं से भी वंचित रखा जाता था, जो उनका अधिकार थीं। अतः अपने उन अधिकारों को प्राप्त करने के लिए वीर सावरकर जैसे लोगों ने अंग्रेज सरकार को आवेदन पत्र लिखे थे और हडतालें भी की थीं। संक्षेप में देखिए वीर सावरकर ने क्या मांगा था और अंग्रेज सरकार ने उन्हें कितना स्वीकार किया।

वीर सावरकर ने 'मेरा आजीवन कारावास' में लिखा है- ''आज जेल अधीक्षक को दो आवेदन पत्र भेजे। डोंगरी से यहां (भायखला) आते ही नियमित मिलने वाला दूध बन्द कर दिये जाने से तथा यहां ज्वार की रोटी खाने से पेट ठीक नहीं रहता था, इसलिए दूध फिर से दिलाए जाने का अनुरोध किया था। दूसरा अनुरोध था कि मुझे पुसतकें मिलती रही हैं, जो अब छीन ली गई हैं, उनमें से कोई एक पुस्तक मुझे पढने को दी जाये।'' बाइबिल तो मिली, पर दूध नहीं मिला।

मैंने इससे पहले एक आवेदन लिखा था। उसमें अपने लिए जो दो आजन्म कारावास की सजाएं थीं, उन्हें एक साथ चलाने की प्रार्थना की थी। अर्थात् मुक्ति सन् १९६० ई० न लिखकर १९३५ (२५ वर्ष बाद) लिखा जाए। सरकार ने मेरे तर्कों को निरस्त करते हुए मेंरी मुक्ति सन् १९६० ई० (५० वर्ष बाद) ही रखी।''

मैंने ठाणे कारागार में ही यह विचार कर लिया ाा कि अण्डमान जाने पर भी मैं कारागानर के नियमों का पालन करते हुए प्रचार काय्र, संगठन, बन्दियों की शिक्षा आदि का कार्य करुंगा । मैं यह अनुभव करता था कि कारागार से बाहर रहकर ज्यादा प्रचार कार्य किया जा सकता है। इसलिए एक वर्ष अण्डमान जेल में पूर्ण हेते ही मैं बाहर भेजे जाने के आवेदन-पत्र पर आवेदन-पत्र भेजने लगा।' यह भी स्वीकार नहीं हुआ।

''ब्रिटेन-जर्मनी युद्ध - प्रथम विश्व युद्ध - १९१४-१८ ई० असहाय स्थिति में होने के बावजूद, दो बडी शक्तियों के बीच चल रहे युद्ध से हिन्दुस्तान की स्वाधीनता के दूरगामी परिणामों पर विचार कर हमने सहयोग की रूपरेखा मन में बनाई तथा हिन्दुस्तान सरकार के नाम एक पत्र भेजने का निर्णय किया। मैंने लिखा- ''हिन्दुस्तान को स्वतंत्र राष्टों की पंक्ति में बिठाना हमारा मुख्य ध्येय था और है। तथापि इस ध्येय की पूर्ति के लिए रक्तपात या सशस्त्र क्रान्ति के मार्ग को ही अपनाने की हमने दृढ प्रतिज्ञा नहीं की है। इतना ही नहीं, यदि किसी अन्य उपाय से यह ध्येय सफल होने की सम्भावना रहती तो शायद हम सशस्त्र प्रतिकार का मार्ग न अपनाते। इस युद्ध के माहैल में यदि सरकार दूरदर्शिता से काम लेकर हिन्दुस्तान को औपनिवेशिक स्वायत्तता देगी और केन्द्रीय विधान मण्डल में हिन्दुस्तानी प्रतिनिधियों को बहुमत प्रदान करेगी तो हिन्दुस्तान के कल्याण के लिए हम और

हमारे क्रान्तिकारी सहयसोगी सशस्त्र प्रतिकार का मार्ग त्यागकर इस युद्ध में इंग्लेंड के पक्ष का समर्थन न करने को तत्पर हो सकेंगे।"

"यदि यह सन्देह हो कि मैंने यह पत्र बन्दीगृह से छुटकारा पाने के लिए नीतिवश लिखा है और हम जेल से छूटने पर पुनः अशान्ति पेदा करेंगे तो मेरा सुझाव है कि हमें न छोडते हुए सरकार अन्य निर्वासित बन्दियों को तत्काल मुक्त कर दे। उनकी मुक्तता में ही हम अपनी मुक्तता का सन्तोष कर लेंगे।"

वायसराय तथा मि० मोन्टाग्यू को भेजे पत्र में वीर सावरकर ने आवेदन भेजने का उद्देश्य राजबन्दियों की मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करना ही बताया। उन्होंने लिखा- " यदि किसी कारण से मुझे मुक्ति न मिले तब भी मैं अन्य सभी राजबन्दियों की मुक्ति से पूर्ण सन्तुष्ट रहूंगा। मैंने यह भी स्पष्ट कर दिया कि यदि सरकार वासतव में दायित्वपूण शासनाधिकार अर्थात् कम से कम केन्द्रीय विधानमण्डल में परिणाम कारक बहुमत दे, साथ ही राजबन्दियों की, निर्वासित देशभक्तों की पूर्णमुक्ति की घोषणा कर दे, अमेरिका, फ्रांस तथा अन्य देशों में भटक रहे भारतीय देशभक्तों पर से आरोप-पत्र वापस ले ले तो मुझ जैसे राजबन्दियों को इस नये घटनाक्रम का स्वागत करने में हिचक न होगी। यदि शान्ति और संविधान का रास्ता खुला हे तो कोई भी सच्चा राष्ट भक्त हिंसा, रक्तपात और अराजकता का मार्ग क्यों अपनायेगा? जब उसके देश की स्वाधीनता, अधिकारों तथा अन्य मांगों को अनसुना कर दिया जाएगा, संविधान सम्मत तमाम रास्ते बन्द कर दिये जाएंगे, राष्टभक्तों का उत्पीडन शुरु हो जाएगा, तब उन राष्ट भक्तों को हिंसा रक्तपात तथा विद्रोह का मार्ग अपनाने को विवश होना पडता है। इंग्लैंड और अमेरिका की तरह हमारे प्रत्येक देशवाासी को स्वायत्त अधिकार प्रगति के अवसर तथा स्वाधीनता प्रदान की जाये जो स्वतः ही युवक हिंसा और अजाजकता कामार्ग छोड़कर शान्ति के मार्ग को अपना लेंगे।

इन पत्रों का अंग्रेज सरकार पर कोई असर नहीं हुआं हां, उपरोक्त पत्रों के कुछ अंश सावरकर ने अपने छोटे भाई नारायण सावरकर को भेजे पत्र में लिखे थे। ये सब विवरण नारायण सावरकर ने देश के प्रमुख नेताओं और सामचार-पत्रों को भेजे। भारत, फ्रांस, जम्रनी तथा अन्य देशों के सामचार पत्रों में भी सावरकर के हवाले से अण्डमान के बन्दियों की दयनीय स्थिति पर लेख प्रकाशित होने लगे। इससे देश में तमाम राजनेतिक बन्दियों की रिहाई के लिए आन्दोलन शुरु हो गया।

वीर सावरकर से पूर्व भी मोतीलाल वर्मा ने बडी चतुराई से काला पानी जेल के अत्याचारों का वर्णन कर १९११ ई० पत्र के माध्यम से भारत पहुंचाया था, जिसे सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने 'दि बंगाली' में अपनी सम्पादकीय टिप्पणी के साथ छापा था। लेख उससे आगे-आगे चलता रहा। यह पहला अवसर था कि जब अण्डमान में राजनीतिक बन्दियों के साथ किये जाने वाले अमानवीय व्यवहार का भारत के लोगों को पता चला। हरियाणा के वीर होतीलाल वर्मा को स्वराजय में देशभक्ति से पूर्ण लेख छापने के अपराध में काला पाली की सजा दी गइ थी।

राजनैतिक बन्दियों के उत्पीडन के समाचार अखबारों में छपे, तो सरकार ने सन् १९१३ में गृहमंत्री सर रे जिनाल्ड क्रडाक को अण्डमान जांच के लिए भेजा। सर क्रडाक ने सावरकर से कहा - सावरकर, तुमने अपनी दुर्दशा स्वयं अपने हाथों की है। मैंने तुम्हारे ग्रन्थ पढे हैं। तुम्हारे अथाह ज्ञान तथा सामर्थ्य का यदि उचित प्रयोग होने लगे, तो तुम्हें ऊंची से ऊंची सरकारी नौकरी यों ही मिल सकती है। लेकिन न जाने क्यों तुमने संकटों व दुर्दशा का मार्ग अपनाया है?" सावरकर बोले- आपकी सहानुभूति के लिए आभारी हूं। यह दुर्दशा समाप्त करना आप लोगों के हाथ में है। मेरे देश को हर प्रकार से प्रगति करने का अवसर प्रदान कर दिया जाये जो केवल मैं ही नहीं अपितु तमाम क्रांतिकारी शान्ति के मार्ग पर

चलने के लिए सहर्ष तत्पर होंगे।'

प्रथम विश्व युद्ध की समाप्ति के समय (१९१८ ई०) बीमारी के कारण हड्डियों का ढांचा बन चुके सावरकर को आठ वर्षों में पहली बार अस्पताल भेजा गया। इससे पहले कितनी भंयकर बीमारी क्यों न हुई हो, किन्तु जेल की कोठरी से बाहर नहीं निकाला गया था। इसका कारण था भारत के सामचार-पत्रों में जेल की दुर्दशा, राजनैतिक बन्दियों का उत्पीडन तथा सावरकर के गिरते सवासयि के समाचार प्रचारित होना। हिन्दुस्तान सरकार ने अण्डमान कारागार और बस्ती के सुधार के लिए निरीक्षण करने हुतु जेल कमीशन को भेजा। इस जांच आयोग ने सावरकर से बातचीत कर तीन-चार बंदियों के प्रार्थना पत्र भी मंगवाए। सावरकर ने अपने आवेदन में जेल प्रशासन में परिवत्रन का सुझाव देते हुए जो तर्क दिये थे उनसे तो जेल कमीशन के सदस्य प्रभावित हुए, किन्तु उनकी स्पष्टोक्ति कि यदि सुधार सफल होगे तथा क्रांतिकारियों का उनसे सामधान होगा तभी वे अपना पुरान रवेया छोडकर शांति के पथ को अपनाएंगे, उन्हें पसन्द नहीं आई।

प्रबुद्ध पाठक! देखिये, जिन आवेदन पत्रों को द्वेष-बुद्धि के लोग माफीनामा बताकर वीर सावरकर जैसे बलिदानी देशभक्त को कायर प्रचारित कर रहे हैं, उसमें देशहित को प्राथमिकता दी गई है और सभी देशवासियों को स्वतंत्रता व उन्नति के अवसर प्रदान करने की शर्त पर ही सशस्त्र क्रान्ति का मार्ग छोडने की बात कही है। इसीलिए पढने-लिखने, भोजन-सुधर आदि सुविधाएं तो जेल के बन्दियों ने बार-बार हडताल करके प्राप्त कर ली, पर उन्हें जेल से मुक्ति नहीं मिली। इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि भारत का जन समुदाय तो अण्डमान के राजबन्दियों की मुक्ति के लिए प्रयासरत था, पर कांग्रेस के बड़े नेता इस तरफ कोई ध्यान नहीं दे रहे थे। यह जानकर सावरकर ने दुःखी हदय से नारायण सावरक को पत्र में लिखा- मैं आश्चर्य में हूं कि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के राजनैतिक बंदियों की मुक्ति के लिए प्रस्ताव पारित करने में शर्म या हिचकिचाहट क्यों है राष्ट्रीय कांग्रेस ने गत वर्ष एक प्रस्ताव पारित किया था किन्तु वह केवल युद्ध के दौरान बन्दी बनाए गए लोगों के बारे में था। हम जैसे राजबन्दी, जो वर्षों से जेल में अमानवीय योजनाएं सहन कर रहें हैं, के बारे में ये नेता लोग कुछ क्यों नहीं सोचते? भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के सुसज्जित, भव्य व वातानुकूलित पण्डालों में बैठे इन नेताओं की आंखें से हमारे लिए, जो मातृभूति के लिए अपना सर्वस्व समर्पित कर दर-दर की ठोकरें खाने के बाद, अपने घरों से हजारों मील दूर समुद्र के बीच में काल पानी की अन्धेरी कोठरियों में पड़े सड़ रहे हैं, आंसू की एक बूंद भी नहीं टपकती। लगता है कि कांग्रेस के नेता इस आशंका के शिकार हैं कि यदि वे राजनैतिक बंदियों, क्रांतिकारियों के प्रति सहानुभूति व्यक्त करेंगे तो सत्तासीन गोरे साहबों में उनकी छवि खराब हो जायेगी। राष्टीय कांग्रेस के मंच से राजनैतिक बन्दियों की रिहाई का प्रस्ताव पारित अवश्य कराया जाना चाहिए।''

नारायण सावरकर ने इस पत्र की असंख्य कापियां राष्टीय कांगेस के अधिवेशन में प्रतिनिधियों के बीच बांटी। इस पत्र के अंश 'अमृत बाजार पत्रिका' 'दी बंगाली' तथा अन्य अंग्रेजी और भाषायी पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए। परिणामतः अण्डमान तथा अन्य स्थानों पर नजरबन्द राजनैतिक बंदियों के प्रति जनता के मन में सहानुभूति की भावना पैदा होने लगी। मुम्बई की 'नेशनल यूनियन' ने राजबन्दियों की रिहाई की मांग को लेकर ७० हज़ार लोगों के हस्ताक्षरों से युक्त एक ज्ञापन हिन्दुस्तान सरकार को भेंट किया। इस ज्ञापन से प्रभावित सरकार ने अण्डमान में तार भेजा- सार्वजनिक शान्ति के समर्थक राजनैतिक बंदी ही मुक्त होंगे। दिल्ली की लेजिस्लेटिव कौंसिल में सावरकर बन्धुओं की मुक्ति की मांग उठाई गई। भारतीय राष्टीय कांग्रेस की कार्यकारिणी की बैठक में प्रस्ताव पारित कर 'सावरकर बन्धुओं तथा पंजाब के श्री बग्गा व श्री रतन चौधरी को अविलम्ब मुक्त किये जाने की प्रबल मांग उठाई गई। इसका

परिणाम यह हुआ कि सावरकर को कोठरी से मुक्त कर जेल के आंगन तक आने की मुक्ति मिली।

कारागार के दसवें वर्ष में सावरकर ने एक और आवेदन-पत्र लिखा कि दस वर्ष हो रहे हैं, मुझे कम से कम टिकट पर बाहर जाने की तथा स्वतंत्रता से बैठने की तो अनुमति दी जाए।' उत्तर आया- दस वर्षों में अभी कई दिन बाकी हैं, अतः नियमानुसार अनुमति नहीं दी जा सकती। दस वर्ष पार होने पर भी उन्हें बाहर जाने की अनुमति नहीं दी गई।

मार्च १९२१ में के०वी० रंगास्वामी आयंगर ने कौंसिल में एक प्रस्ताव रखकर कौंसिल के गवर्नर जनरल से प्रार्थना की कि वे सावरकर के विषय पर विचार करें। इस प्रस्ताव पर बहुत तर्क-वितर्क और वाद-विवाद हुआ। हयात खां और नवाब सर बहराम खां ने इस प्रस्ताव का घोर विरोध करते हुए कहा कि सावरकर भारत के लिए खतरा है, सरकार का उन्हें मुक्त करना आग में घी डालने के समान होगा। यह सुनकार आयंगर ने कहा कि वे सावरकर के चाल-चलन का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेते हैं।

शचीन्द्रनाथ सान्याल सेना में विद्रोह फैलाने के आरोप में बन्दी बनाकर १६ फरवरी १९१६ को आजीवन कारावास भुगतने अण्डमान भेजे गये थे। प्रथम विश्वयुद्ध की समाप्ति पर इंग्लैंड के राजा ने विजय की खुशी में २५ राजनैतिक कैदियों को छोडा। फरवरी १९२० को शचीन्द्रनाथ सान्याल मुक्त होकर भारत पहुंचे। पिछले लेख में हमने देखा था कि सुरेन्द्रनाथ बनर्जी और उनके दामाद वी०सी० चटर्जी के प्रयास से शचीन्द्रनाथ की मुक्ति हुई थी।

कालापानी से भारत आते ही सान्याल ने बम्बई में नारायण सावरकर को पत्र भेजा था कि राजबन्दियों की मुक्ति के लिए कुछ करना चाहिए। वे स्वयं बनारस पहुंचकर मदनमोहन मालवीय जी से मिले, बाद में जवाहर लाल नेहरू के पास गये, पर निराशा हाथ लगी। सितम्बर १९२० में कलकत्ता में स्पेशल कांफ्रेस से भी निराश होकर सान्याल लाला लाजपत राय के पास गये। उनके सभापतित्व में ऑल इण्डिया पॉलिटिकल सफरर्स कांफ्रेस में क्रांतिकारियों के प्रतिलोगों में सहानुभूति जगाई। उसी वर्ष नागपुर में कांफ्रेस हुई और सान्याल वहां पहुच गये और विपिनचन्द्र पाल जी से बहुत अनुरोध किया कि हमें राजनैतिक बन्दियों को छुडाने के लिए कुछ तो करना चाहिए। उनके कहने पर विपिनचन्द्र पाल ने एक प्रस्ताव तैयार किया ओर उसे विषय निर्वाचिनी समिति से पास करवा लिया।

नागपुर कांग्रेस के अधिवेशन में भी विपिनचन्द्र पाल ने इस प्रस्ताव को रखा। सान्याल व नारायण सावरकर आदि ने इसका अनुमोदन किया। यहां सान्याल ने भारत व अण्डमान की जेलों में सडने वाले देशभक्तों के कष्टों का ऐसा मार्मिक वर्णन किया कि सुनकर श्रोता रो पडे।

नागपुर अधिवेशन के बाद ये दोनो सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के पास विनायक दामोदर सावरकर के विषय में कहने गये। सुरेन्द्र नाथ जी ने इन्हें कहा कि हमें तो तुम लोग गाली दिया करते हो। इन्होंने उनको विश्वास दिलाया कि राजनैतिक बन्दियों के लिए उन्होंने जितना काम किया है उतना और किसी ने नही किया है। हृदय से निकली सत्य बात असर कर गई और सुरेन्द्रनाथ ने सब नोट कर लिया।

यह सब इतना विस्तार से लिखने का उद्देश्य यही दर्शाना है कि विनायक सावरकर द्वारा माफी मांगने पर अंग्रेजी सरकार ने उन्हें १९११ या १९१२ ई० में ही जेल से मुक्त नहीं कर दिया थ। जनता की सहानुभूति, क्रान्तिकारियों व नेताओं के लम्बे संघर्ष के फलस्वरूप २ मई १९२१ को गणेश सावरकर व विनायक सावरकर अण्डमान जेल से भारत की जेलों में स्थानान्तरित किये गये थे, मुक्त नहीं। पांच दिन बाद वे कलकत्ता पहुंचे और अलीपुर जेल में डाल दिये गये। आठ दिन बाद गणेश सावरकर को बीजापुर जेल में भेज दिया गया और विनायक सावरकर को बीजापुर जेल में भेज दिया गया और विनायक सावरकर को रत्नागिरि में। केवल स्थान

बदला था, अत्याचार वही थे। अण्डमान में बडे प्रयत्नों से व हडतालों से प्राप्त लेखन, अध्ययन व श्रम से मुक्तता की सुविधाएं भी यहां छीन ली गईं। पुनः जेल के अत्याचारों ने आत्महत्या के प्रति आकर्षण बढा दिया।

गणेश सावरकर को बीजापुर कारागार की अन्धेरी, सीलन भरी तथा एकान्त कोठरी में रखा गया था। इसका उनके मस्तिष्क पर कुप्रभाव पडा। जब नारायण सावरकर उनसे मिलने गये, तो वे एक प्रकार से मरणासन्न थे। मांग किये जाने पर उन्हें अहमदाबाद के कारागार में भेज दिया गया, पर टी०बी० की समुचित चिकित्सा नहीं कराई गई। अन्त में उनका शरीर पूरी तरह जवाब देता गया। सितम्बर १९२२ में गणेश सावरकर को बेहोशी की दशा में मुक्त किया गया। सोचिये, इसे मुक्ति कहें या पुनर्जन्म, दो वर्ष बाद विनायक सावरकर को रत्नागिरि से यरवदा कारागार में स्थानान्तरित कर दिया गा। अण्डमान में सुपरिण्टेण्डेण्ट रहे मेजर मुर्रे को पंजाबी विभाग का अध्यक्ष बनाकर यरवदा जेल में स्थनान्तरित किया गया। उन्होंने सावरकर के साथ उदारता पूर्वक व्यवहार किया। एक दिन सावरकर से पूछा- 'यदि आपको मुक्त कर दिया जाए, तो क्या करोगे? सावरकर ने कहा- ''यदि राजनीति में भाग लेने पर प्रतिबन्ध लगाया, तो समाज सेवा के क्षेत्र में रचनात्मक कार्य कर मातृभूमि की सेवा करूंगा। यदि बिना शर्त मुक्त यिा गया, तो राजनीति में सक्रिय हो सकता हूं।''

सन् १९२३ ई० में रत्नागिरि में तृतीय रत्नागिरि जिला राजनेतिक सम्मेलन में एक विशेष प्रस्ताव के माध्यम से सावरकर की बिना शर्त रिहाई की मांग की गई। जमनादास मेहता की अध्यक्षता में सावरकर मुक्ति समिति का गठन किया गया। उस समिति ने 'सावरकर को मुक्त करना क्यां आवश्यक' शीर्षक से एक पत्र भी वितरित किया। बम्बई के मारवाडी विद्यालय में विट्ठल भाई पटेल की अध्यक्षता में की गई सभा में जोरदार शब्दों में सावरकर की रिहाई की मांग दोहराई गई।

एक दिन बम्बई के गवर्नर जनरल सर ज्यार्ज लौयड (लियोइड) दो-तीन वरिष्ठ अधिकारियों के साथ सावरकर से मिलने जेल में पहुंचे। उनसे राजनीति से लेकर मुक्ति तक की चर्चाएं हुई सावरकर ने पहले की तरह स्पष्ट शब्दों में कहा - ''जब शान्त और वैधमार्ग से राष्ट्र की राजनैतिक आकांक्षाओं को पूरा करना संभव नहीं हो सका, तभी क्रांतिकारी मार्ग अपनाना पडा था। आज की बदलती स्थिति में यदि सुधारों के माध्यम से, वैध मार्ग से, यह सब संभव होता दिखाई देगा, तो हमें संकटपूर्ण माग्र को अपनाने की क्यों जरुरत होगी? उन्होनें पूछा- यदि सरकार आपके इस आश्वासन पर विश्वास न करें तो? सावरकर बोले-तो कुछ कालाविधि तक मैं राजनीति से अलग रहकर शिक्षा और राष्टभाषा हिदी के प्रचार और प्रसार, समाज-सुधार तथा हिन्दु संगठन के कार्य में लगकर समाज की सेवा करता रहूँ।' गवर्नर ने आश्वासन दिया कि वे राजनीति में भाग लेने पर कुछ अवधि तक प्रतिबन्ध लगाकर 'स्थलबद्धता' की शर्त पर उनकी मुक्ति का सरकार को सुझाव देंगे। कारागार के अधीक्षक ने भी सावरकर की मुक्ति की सिफारिश की।

उपरोक्त वार्तालाप के आधार पर सावरकर की मुक्ति के कागजात तैयार किये गये। उन पर मुख्यतः दो शर्तें लगाई गई -पांच वर्ष तक राजनीति में भाग न लेना और रत्नागिरि में ही स्थानबद्ध रहना। पांच जनवरी १९२४ को नारायण सावरकर मिलने के लिए जेल में आए और ६ जनवरी को विनायक सावरकर को कारागार से कुक्त किया गया। देश-विदेश से उन्हें बधाइयां मिलने लगी। तब किसी ने उन्हें 'राष्टयोद्धा' कहा, तो किसी ने 'वीर' के अलंकरण से अलंकृत किया। यह 'वीर' शब्द सावरकर ने अपने गुणों से अर्जित किया था, 'केसर-ए-हिन्द' की तरह अंग्रेजों द्वारा थोपा हुआ नहीं था। उन्हें 'कायर' प्रचारित करने वाले लोग क्या बताएंगे कि जेल से छूटकर सावरकर ने देश को क्या हानि पहुंचाई और यदि जेल में ही सडकर मरते, तो देश की क्या भलाई करते?

❑❑

इन्द्र व उसका सोमपान

-महात्मा चैतन्यस्वामी

इन्द्र के सम्बन्ध में जन-साधारण में अनेक प्रकार की काल्पनिक, निराधार, अवैज्ञानिक एवं हास्यास्पद कथाएं प्रचलित हैं। भागवत पुराण के छठे स्कन्ध के सातवें अध्याय में इस सम्बन्ध में लिखा है कि- 'इन्द्र को त्रिलोकी का ऐश्वर्य पाकर अभिमान हो गया जिसके कारण वह धर्म मर्यादा एवं सदाचार का उल्लंघन करने लगा। एक समय की बात है, वह भरी सभा में अपनी पतनी शची के साथ अपने ऊंचे सिहांसन पर बैठा हुआ था और उन्चास मरुतगण, आठ वसु, ग्यारह रूद्र आदित्य, ?ऋषिगण, विश्वदेवा, साध्यगण और दोनों अश्विनि कुमार उनकी सेवा में उपस्थित थे। सिद्ध, चारण, गन्धर्व, ब्रह्मवादी, मुनिगण, विद्याधर अप्सराएं, किन्नर पक्षी और नाग उसकी सेवा और स्तुति कर रहे थे सब ओर ललित स्वर में देवराज इन्द्र की कीर्ति का गान हो रहा था। ऊपर की ओर चन्द्रमण्डल के समान सुन्दर श्वेत छत्र शोभायमान था। चंवर एवं पंखे आदि महाराजोचित सामग्रियां यथा सोने का मुकुट पहनता है, उसके हाथ में बज्र रहता है, वह ऐरावत नामक श्वेत हाथी की सवारी करता है, मेनका व रंभा आदि अप्सराएं उसके दरबार में नृत्य करती हैं, वह साधनारत ऋषि-मुनियों की तपस्या भंग करने के लिए अप्सराओं को भेजता है क्योंकि उसक सदा यह उर बना रहता है कि कोई ऋषि मेरे पद को प्राप्त न कर सके। वह स्वयं गौतम ऋषि की पत्नी अहिल्या का चरित्रभ्रष्ट करने के लिए गया था। ..... पुराणों का इन्द्र युद्ध भी करता है, उसने दधीचि की हड्डियों से शस्त्र बनाकर वृत्रासुर का वध किया था। ब्रह्मवैवर्त्त पुराण में लिखा है कि इन्द्र देवों का राजा था जिसने गौतम ऋषि की पत्नी अहिल्या के साथ जार कर्म किया, गौतम ऋषि ने उवसे शाप दिया कि तू सहस्त्र भग वाला हो जा, अहिल्या को शाप दिया कि तू पत्थर हो जा, श्रीरामजी की पादरज से वह शापमुक्त होकर पुनः स्त्री बनी थी। एक अन्य कथा पुराणों में इस प्रकार है कि त्वष्टा के पुत्र वृत्रसुर ने देवों के राज दन्द्र को निगल लिया जिससे देवता भयभीत होकर विष्णु के पास गए, विष्णु ने उसके मारने का उपाय यह बताया कि समुद्र के झाग को उठाकर उस पर मारना उससे वह मर जाएगा। इसी प्रकार देवासुर संग्राम की कथा भी है। वृत्रासुर दैत्यों का राजा था जिसके साथ बहुत बडी दैत्यों की सेना थी तथा उसका पुरोहित वृहस्पति था राक्षसों को मारने के लिए दधीचि ऋषिजी ने अपनी हड्डियां प्रदान की जिनके शस्त्र से इन्द्र मे वृत्रासुर का वध किया.....।

वास्तविकता यह है कि इन्द्र के नाम पर पौराणिक काल में इस प्रकार की कल्पनाएं इसलिए गढ ली गई क्योंकि वेद में आए इन्द्र, वृत्र, गौतम, अहिल्या, दधीचि, अप्सरा, रंभा, उर्वशी आदि शब्दों को सही-सही परिप्रेक्ष्य में नहीं समझा गया क्योंकि सायण एवं महिधर आदि तथा पाश्चात्य विद्वानों ने वेद मन्त्रों के अध्यात्म, अधिदैवत और अधिज्ञ आदि अर्थ करने की परम्परा का निर्वहन नहीं किया। पुराण साहित्य तो वैसे भी अनेक प्रकार की अविश्वसनीय, अनर्गल, काल्पनिक, सृष्टिनियम के विरूद्ध बाताकें तथा हमारी गरिमामयी प्राचीनतम वैदिक-संस्कृति की ज्ञान-गरिमा रूपी विरासत को नीचा दिखाने की बातों से भरा पड़ा है। संभवतः हमारी गरिमापूर्ण संस्कृति एवं समुज्जवल इतिहास को पूर्णरूप से अविश्वसनीय, अवैज्ञानिक, अश्लील और हेय दिखाने के लिए इस प्रकार के साहित्य की रचना विधिवत् करवाई गई होगी और इसका कुपरिणाम भी हम आज देख रहे हैं इस प्रकार के निराधार ग्रन्थों को विश्वसनीयता की श्रेणी में लाने के लिए इनके रचेता के रूप में महर्षि वेदव्यासजी

का नाम लिया जाता है मगर महर्षि दयानन्द सरस्वती जी का अभिमत है कि - 'जो अठारह पुराणों के कर्त्ता व्यासजी होते, जो उनमें इतने गपोडे न होते। क्योंकि शारीरिक सूत्र, योगशास्त्र के भाष्यादि व्यासोक्त ग्रन्थों के देखने से विदित होता है कि व्यासजी बडे विद्वान सत्यवादी धार्मिक योगी थे। वे ऐसी मिथ्या कथा कभी न लिखते। और इससे यह सिद्ध होता है कि जिन सम्प्रदायी परसपर विरोधी लोगों ने भागवतादि नवीन कपोलकल्पित ग्रन्थ बनाए हैं, उनमें व्यासजी के गुणों का लेश भी नहीं था और वेदशास्त्रविरूद्ध असत्यवाद लिखना व्यास सदृश विद्वानों का काम नहीं किन्तु यह काम वेद-शास्त्र विरोधी स्वार्थी अविद्वान लोगों का है।' अपने ग्रन्थ 'सत्यार्थप्रकाश' में महर्षि दयानन्दजी ने प्रमाण भी दिया है कि -'यह भागवत बोबदेव का बनाया है, जिसके भाई जयदेव ने 'गीतगोविन्द' बनाया है। देखो उसने यह श्लोक अपने बनाए 'हिमाद्रि' नामक ग्रन्थ में लिखे हैं कि 'श्रीमद्भागवतपुराण मैंने बनाया है।' उस लेख के तीन पत्र हमारे पास थे। उनमें से एक पत्र खो गया है। उस पत्र में श्लोकों का जो आशय था, उस आशय के हमने दो श्लोक बनाके नीचे लिखे हैं। जिसको देखना हो, वह 'हिमाद्रि' ग्रन्थ में देख लेवें-

'हिमाद्रेः सचिवस्यार्थे सूचना कियतेऽधुना।
स्कन्धाऽध्यायकथानां च यत्प्रमाणं समासतः।।
श्रीमद्भागवतं नाम पुराणं च मयेरितम्।
विदुषा बोबदेवेन श्रीकृष्णस्य यशोन्वितम्।।'

इसी प्रकार के नष्टपत्र में श्लोक थे। अर्थात् राजा के सचिव हिमाद्रि ने 'बोबदेव' पण्डित से कहा कि - 'मुझको तुम्हारे बनाये श्रीमद्भागवत के सम्पूर्ण सुनने का अवकाश नहीं है। इसलिए तुम संक्षेप से श्लोकबद्ध सूचीपत्र बनाओ। जिसको देखके मैं श्रीमद्भागवत की कथा को संक्षेप से जान लूँ। सो नीचे लिखा हुआ सूचीपत्र उस 'बोबदेव' ने बनाया। उन में से नष्ट पत्र में १० श्लोक खो गए हैं। गयारहवें श्लोक से लिखते हैं। ये नीचे लिखे श्लोक सब बोबदेव ने बनाये हैं। वे-

बोधयन्तीति हि प्राहुः ..... प्रोक्ता द्रौणिजयादयः।। इति प्रथम स्कन्धः इत्यादि बारह स्कन्धों का सूचीपत्र इसी प्रकार 'बोबदेव' पण्डित ने बनाकर 'हिमाद्रि' सचिव को दिया। जो विस्तार देखना चाहे, वह बोबदेव के बनाये हिमाद्रि ग्रन्थ में देख लेवें। इसी प्रकार अन्य पुराणों की लीला समझनी। परन्तु उन्नीस बीस इक्कीस एक दूसरे से बढकर हैं.....। 'पण्डित युधिष्ठिर मीमांसक जी अपनी टिप्पणी में लिखते हैं- 'द्र०-नीलकण्ठ कृत देवीभागवत की टीका का उपोद्घात- 'विष्णु-भागवतं बोपदेवकृतमिति वदन्ति। शाहजहां के समकालिक कवीन्द्राचार्य के पुस्तकालय के सूचीपत्र बडोदा से छपा में भागवत् को बोपदेवकृत लिखा है।'

इन्द्र के सम्बन्ध में विशद् चर्चा हम आगे करने का प्रयास करेंगे मगर यहां पर केवल इन पौराणिक कथाओं के वैदिक स्वरूप पर थोडा सा विचार कर लेते हैं। वेद में इन्द्र सूर्य का भी नाम हे तथा वृत्र बादलों का नाम है। ऋग्वेद के एक मन्त्र १-३२-१० पर विचार करते हुए यास्क लिखते हैं- तत्रको वृत्रो मेघ इति नेरूक्ता अपां च ज्योतिषश्च मिश्रीभाव कर्मणा वर्ष कर्म जायते। अर्थात् वृत्र नाम मेघ का है। सूर्य की किरणों तथा बादल के जल के मेल से वर्षा होती है। **ऋषेर्दृष्टार्थस्य प्रीतिर्भवत्याख्यान संयुक्ता।** ऋषि अर्थ को समझने के लिए आलंकारिक आख्यानों का सहारार लेते है। वेद में इन्द्र सम्बन्धी आलंकारिक वर्णनों को अपनी अज्ञानता के कारण पुराणों में काल्पनिक और विकृत रूप में प्रस्तुत किया गया है। पाश्चात्य विद्वानों तथा आगे आने वाले संस्कृत के कवियों ने भी इसी दूषित पद्धति का निर्वहन करते हुए न केवल अर्थ का अनर्थ किया बल्कि वेद में इतिहास आदि भी सिद्ध करने का कुत्सित प्रयास किया है। सूर्य रूपी इन्द्र स्वर्गलोग अर्थात् घुलोक में रहता है। इसकी किरणें ही बज्र है। यह सूर्य बादलों से ऊपर रहता है तथा ये बादली ही उसका ऐरावत नामक हाथी है। सूर्य की किरणें अपसरण अर्थात् गति करने के कारण अप्सराएं कहलाती हैं, जो नृत्य करती हुई दिखाई देती हैं। **'अप्सु सरन्ति**

ताः अप्सराः' जल में प्रविष्ट होती हैं इसलिए किरणें अप्सराएं हैं। लहरों के साथ किरणें भी नृत्य करती हैं यही इनका नाचना है। इस सूर्य अर्थात् इन्द्र का युद्ध बादलों अर्थात् वृत्र से होता है। इन्द्र अपने रिणों रूपी बज्र से वृत्रासुर को मारते हैं जिससे वर्षा होती है और बादल मर जाते हैं। सूर्य की किरणों का नाम रंभा, उर्वशी आदि भी है। जब अन्तरिक्ष में सूर्य की किरणें फैलती हैं तब सातों ऋषियों का (सात तारों का) तप समाप्त हो जाता है अर्थात् वे निस्तेज हो जाते हैं, यही अप्सराओं (किरणों) के द्वारा ऋषियों का तप भंग करना कहा गया है।

ऋग्वेद के मन्त्र १-८४-१३ का भाष्य करते हुए स्कन्द स्वामी ने एक कथा गढ ली कि देवताओं ने एक बार ब्रह्मा से कालकंज नाम के असुर को मारने का उपाय पूछा तो ब्रम्हा ने उन्हें दध्यड् ऋषि के पास उपाय जानने के लिए भेजा। देवता उनके पास गए तो ऋषि ने उनके भाव को जानकर अपने प्राण त्याग दिए। उसकी हड्डियों से इन्द्र ने उस असुर का वध किया कालान्तर में यही कथा दधीचि ऋषि के नाम से प्रचलित हो गई कि दधीचि की हड्डियों के बज्र से इन्द्र ने वृत्रासुर का बध किया। यह कथा इसलिए गढ ली गई क्योंकि वेद मन्त्र में आए शब्दों के आलंकारिक वर्णन को सही-सही परिप्रेक्ष्य में नहीं समझा गया। मन्त्र का सीधा सा अर्थ है- **अप्रतिष्कुतः** स्थिर **इन्द्रः** इन्द्र ने **दधीचिः** अपनी तेजरूप की **अस्थभिः** अस्थिर किरणों से **वृत्राणि** बादलों को **नवतीर्नव** निन्यानवे बार **जघान** मारा । भावार्थ रूप में इसे हम इस प्रकार समझ सकते हैं कि सूर्य अपनी धुरी पर स्थित है। सूर्य की की किरणों की उष्माा से बादल बरसते है।। यह प्रक्रिया वर्ष के महीनों में अर्थात् आषढ, श्रावण और भादों में चलती रहती हैं। बार-बर बादल उठते रहते है और बार-बार सूर्य उन्हें समाप्त करके वर्षा करता है। मन्त्र का आध्यात्मिक अर्थ इस प्रकार है- इन्द्रः जितेन्द्रिय पुरुष **अप्रतिष्कुतः** प्रतिकूल शब्द से रहित हुआ-हुआ, प्रतिद्वन्द्वी से रहित हुआ-हुआ **दधीचः** ध्यानी पुरूष की ध्यानं प्रत्यक्तः। निरू०१२-३३ **अस्थिभिः** असु क्षेपणे विषयों को दूर फैंकने की शक्तियों से वृत्राणि ज्ञान की आवरणभूत वासनाओं को नवतीः नव निन्यावे बार जघान नष्ट करता है और इस प्रकार शतवर्षों को वासना-शून्य बनाता है। मन्त्रार्थ का भाव स्पष्ट है कि ध्यान-परायण व्यक्ति ही दध्यड् व दधीचि है। विषयों को दूर फेंकने की वृत्तियां ही हड्डियां हैं। वासना ही वृत्र है। निन्यानवे बार नाश का अभिप्राय यही है कि हम सदा वासना के आक्रमण को अपने से दूर रखने के लिए सजग रहते हैं।

इसी प्रकार इन्द्र द्वारा गौतम ऋषि की पत्नी अहिल्या से व्यभिचार करना, गौतमजी का इन्द्र को तथा अहिल्या को शाप देना, श्रीरामजी के चरण स्पर्श से अहिल्या का उद्धार होना आदि भी कथा कल्पित कर ली गई है जबकि वास्तविकता यह है कि - **गच्छतीति गोः अतिशयेन गच्छतीति गौतमः चन्द्रः** अर्थात् जो शीघ्र चलता है उस चन्द्र का नाम गौतम है। **अहर्दिनं लीयतेऽस्यां तस्माद्रात्रि अहिल्याः** अर्थात् दिन जिसमें लीन हो जाता है उस रात्रि का नाम अहिल्या है। **'जृष वयो हानौ'** इस धातु से जार शब्द बना है, अर्थात् नष्ट करने वाला। इस परिप्रेक्ष्य में देखा जाए तो यह जो अश्लील एवं काल्पनिक कथा बना दी गई है, वह तो वास्तव में सूर्योदय और सूर्यास्त का बहुत ही मनोरम एवं हृदयग्राही आलंकारिक वर्णन है जब इन्द्र सूर्य उदय होता है तब चन्द्रमा गौतम दूसरे छोर पर समुद्र की तरफ चला जाता है। उसके जाने पर सूर्य रात्रि रूपी अहिल्या को नष्ट जारकर्म कर देता है। जब सूर्य स्वयं अस्ताचल की तरफ जाता है उस समय अपनी किरणों चरणों के स्पर्श से जात हुए भी अहिल्या रात्रि को पुनः जीवित कर देता है।

वास्तव में इन्द्र शव्द परमैश्वर्यार्थक "इदि' धातु से उणदि 'रन्' प्रत्यय करके सिद्ध होता है। 'इन्द्र' के निरुक्त में प्रदर्शित कई निवर्चनों में से एक यह है- **इन्दन् शत्रूणां दारयिता** निरुक्त १०-६। इसके अनुसार परमैश्वर्यार्थक 'इदि' धातु तथा विदारणार्थक 'दृ' धातु के

योग से इन्द्र शब्द बना है। जो परमैश्वर्यवान् होता हुआ शत्रुओं का विदारण करता हैं, वह 'इन्द्र' है। महर्षि दयानन्द ने इन्द्र के परमेश्वर, जीवात्मा, विद्वान् पुरूष, वीर राजा, प्राण, वायु, सेनानी, शूरवीर योद्धा, विद्युत, यज्ञ, सूर्यलोक, किसान एवं वैद्य आदि अर्थ किए हैं।

अधिदैवित क्षेत्र में सूर्य इन्द्र है और वृत्र हैं- अन्धकार या बादल आदि। अधिभूत क्षेत्र में राजा या सेनापति इन्द्र और वृत्र हैं- देश पर आक्रमण करने वाले शत्रु आदि और आध्यात्मिक क्षेत्र में आत्मा इन्द्र है। और वृत्र हैं- अज्ञानान्धकार एवं पापकर्म आदि। इन समस्त दृष्टिकोणों से इन्द्र द्वारा सोम-पान करने की संगती लगाई जानी अपेक्षित है तभी इन्द्र तथा उसके द्वारा किए गए सोमपान के रहस्य को हम भली प्रकार से समझ सकते हैं।

इस लेख में हम विशेषतः पण्डित रघुनन्दन शर्माजी का चिन्तन प्रस्तुत कर रहे हैं। अपने ग्रन्थ 'वैदिक सम्पत्ति' में 'सोमलता' शीर्षक के अन्तर्गत सोम के सम्बन्ध में वे लिखते है- 'सोमलता की उत्पत्ति पावगी महाशय ने मूजवान् पर्वत पर बतलाई है। प्रमाण में 'सोमस्येव मौजवतस्य भक्षो' यह ऋग्वेद १०-३४-१ का मन्त्र उद्धृत किया है। निरूक्त में मूलवान पर्वतो पाठ है, किन्तु वेद का 'मौजवत्, और निरुक्त का 'मूजवान्' एक ही है।, इसमें सन्देह है। क्योंकि सृश्रुत में 'मुजवान्' सोम का पर्याय लिखा हुआ है। मौजवत्, मूजवान् और मुंजवान में अन्तर ज्ञात होता है। वेद में एक पदार्थ का वर्णन जो सोम का पर्याय लिख हुआ है। मौजवत्, मूलवान् और मूंजवान में अन्तर ज्ञात होता है। वेद में एक पदार्थ का वर्णन जो सोम नाम से आता है, वह पृथ्वी के वृक्षों की जान है। वह देवताओं को वृक्षों की तरह रस, छाया, हरियाली आदि वर्नाय तथा सौम्य पदार्थों से तृप्त करता है। इन्द्र के नन्दनवन का यही देवतरू हैं जिस प्रकार यह आकाश का वृक्ष है, उसी प्रकार यह पृथ्वी की वनस्पति का पोषक है। उसमें सौम्य भाव लाने वाला औषधिराज है और वनस्पति मात्र का स्वामी है। वह जिस स्थान में रहता है, उसको 'मौजवत्' कहते हैं। पहिले हम दिखला आए है कि गौवों, किरणों के निवास को 'व्रज' और अश्वों-किरणों के निवास को 'अर्व' कहते है।, उसी प्रकार सोम के स्थान को मौजवत् कहा गया है। यह स्थान पृथ्वी पर नहीं, किन्तु आकाश में है। पावगी महाशय 'आर्यावर्तातील अर्याची जन्मभूमि' में पृष्ठ २१४ पर ब्राह्मण का वाक्य **'दिवि वै सोम आसीत्** अर्थात् दिवि ही सोम था लिखकर स्वयं कहते हैं कि 'ह्यावरून असें, दिसतें, की सोम हा प्रथमतः स्वर्गान्त होता, परंतु तेथून त्याला भूतलावर आणिलें,'। अर्थात् ऐसा ज्ञात होता है, कि यह सोम पहिले स्वर्ग में था, परन्तु वहां से उसको पृथ्वी पर लाए। यह सोम पहिले पृथ्वी पर नहीं था, परन्तु याज्ञिक काल में जिस प्रकार यज्ञों में पशुओं का वध होने लगा, उसी तरह सोमरस के नाम से किसी नशीली चीज का उपयोग भी होने लगा। सुश्रुत-चिकित्सा-स्थान अध्याय २९ के समग्र पाठ से यह सब लीला प्रकट हो जाती है। सुश्रुत में **'अंशुमान् मुजवांश्चैव चन्द्रमा रजतप्रभः'** आदि इसके अनेक नाम है। और सबका गुण भी समान ही लिखा है। यथा-

सर्वेषामेव चैतेषामेको विधिरुपासते।
सर्वे तुल्यगुणश्चैव विधानं तेषु दृश्यते।। (सुश्रुत)

फिर यज्ञ के लिए लिखा है कि **'सोममादायाध्वरकल्पेनाहृतमभिसुतमभिहुतं च'** अर्थात् सोम लाकर अध्वरकल्प के अनुसार आहुति देकर **'सोमकन्दं सुवर्णसूच्या विदायं गृहणीयात्'** अर्थात् सोम की जड़ को सुवर्ण की सूची से छेदकर रस निकाल लेवे और पी जावे। आगे लिखा है, कि इस क्रिया से रस पीकर जो प्रवेश करता है उसको अग्नि नहीं जला सकती, उसके एक हजार हाथी का बल हो जाता है। वह बहुत सुन्दर और सब संसार में फिरने वाला होता है। इसके सिवा वह **'दश वर्षः यसहस्त्राणि नवां धारयते तनुम्'** अथात् दश हजार वर्ष तक जवान बना रहता है। शुक्ल पक्ष में इस सोमलता में पत्ते होते हैं और कृष्ण पक्ष में गिर जाते हैं यह हिमालय, आबु, सह्याद्रि, महेन्द्राचल, श्री शैल,ख, देवगिरि, पंजाब और सिन्ध में मिलती है।

यहां तक सुश्रुत का ही वर्णन है। इस सुश्रुत के वर्णन और वेद की पुष्टि से आपकी उत्कट इच्छा इसके पाने की हुई होगी। साथ ही इतने स्पष्ट वर्णन से यह भी विश्वास हो गया होगा, कि वेद में इसी पत्ती का वर्णन है। पर जब यह प्रश्न होता है कि क्या सोमलता हमको दिखला सकते हो? तो सुश्रुत के ही मुंह से कहलाया जाता है कि-

न तान्मश्यन्त्यधर्मिष्ठाः कृतघ्नाश्चापि मानवाः।
भेषजद्वेषिणश्चापि ब्राम्हणद्वेषिस्तथा।। सुश्रुत २९

अर्थात् सोम का पौधा अधर्मी, कृतघ्न, औषधद्वेषी और ब्राम्हण द्वेषी को दिखलाई नहीं पडता। चलो छुट्टी हुई, आंख खुल गई, कहीं कुछ नहीं। क्या इन्द्रजाल है! हम पावगी महोदय से विनयपूर्वक पूछते हैं कि क्या आपने कभी सोमलता देखी है? जिस हिमालय से सुरगौ की पूंछ, कस्तूरी, शहद, शीलाजीत, आदि सैकडों जंगली और पहाडी चीजें यहां बिकने को आती हैं, वहां से क्या आप कृपा करके हमको दस रुपए की सोमलता भी मंगा देंगे? हरगिज नहीं। हमारा तो दृढ विश्वास है, कि सोमलता वास्तव में पृथिवी पर की कोई चीज ही नहीं है। २५ अक्टुबर सन् १८८४ के 'एकेडेमी' में प्रो० मैक्समूलर लिखते हैं कि 'सूत्रों और ब्राम्हणों में भी यह बात मानी गई है, कि सोमलता का मिलना बहुत कठिन है।' इसी तरह जन्दावस्था भाग १ पृष्ठ ६९ पर डारमेस्टेटर कहता है, कि 'सोम या होम के अन्तर्गत समस्त प्रकार की वनस्पतियों की जीवनी शक्ति का समावेश होता है। रहे सोम के पीने वाले इन्द्र, अग्नि आदि देवता, जिनको पावगी महाशय भारत में ही जन्में हुए बतलाते हैं। हमारी समझ में नहीं आता कि इसमें क्या फिलासफी है।? क्या इन्द्र और अग्नि भी कोई पहाड़ी लोग हैं? यदि नहीं तो उनका पैदा होना क्या? सोम का अर्थ तो इन्द्र सूर्य और अग्नि विद्युत से ही समझ लेना था, कि यह पदार्थ पृथिवी का नहीं है। मौजवत मधुर, मदकारी और वनस्पति आदि शब्द, जो सोम के लिए ऋग्वेद १०-३४-१, ६-४७-१ और १-९१-६ में आये हैं, आपको धोखा दे रहे हैं, परन्तु हम विश्वासपूर्वक कहते हैं, कि सोमलता पृथ्वी का पदार्थ नहीं है। जैसा कि डारमेस्टेटर कहते है कि सोम, समस्त वनस्पति की जीवनी शक्ति का नाम है। हम भी कहते हैं कि यह सत्य हैं वनस्पति की जीवनी शक्ति चन्द्रमा के अधीन है। उसका नाम सोम है। वह औषधिराज है वह लतारूप है। प्न्द्रह दिन तक उसमें एक पत्ता बढता है और पनद्रह दिन तक एक एक घटता हैं यह शान्त चित्तवालों के लिए मधुर, विरहियों के लिए कटु और युवावस्था वालों के लिए मदकारी है। आकाश में यह जिस स्थान में रहता है, उस स्थान को मौजवत कहते हैं। ऋग्वेद में है कि-

अप्सु मे सोमो अब्रवीदन्तर्विश्वानि भेषजा।
अग्निं च विश्वशंभुवमापश्च विश्वभेषजी।।
ऋ१-२३-२०

यहां सोम समस्त औषधियों के अन्दर व्याप्त बतलाया गया है। इस सोम को ऐतरेय ब्राम्हण ७-११-८ में स्पष्ट कह दिया गया है, कि **'एतद्वेदेवसोमं यच्चन्द्रमाः'** अर्थात् यही देवताओं का सेाम है जो चन्द्रमा है इस सोम को गरुड और श्येन स्वर्ग से लाते हैं। गरुड और श्येन भी सूर्य की किरणे ही हैं। सोम का सौम्यगुण औषधियों में पडता है, यही स्वर्ग से गरुड और श्येन द्वारा उसका आना है। महाशय पावगी को हम सलाह देते हैं, कि आप वेदपाठ करते समय ध्यान रखें कि वेदों में एक आकाशीय संसार भी है। पृथ्वी में ऐसा एक भी पदार्थ नहीं , जो वहां न हो। उन्हीं पदार्थों के नाम से ही पृथ्वी के पदार्थों का नामकरण हुआ है। हम पिछले पृष्ठों में आकाशीय संसार के कुछ नमूने दिखला आए हैं। इन्द्र वृत्र के युद्ध को पढकार जमीन में लडने वाले दो राजाओं का जिस प्रकार धोखा होता है, पर समझ तो लेना चाहिए कि वृत्र से लडने वाले इन्द्र के अन्य विशेपण क्या हैं? वेदों में सोमलता, सिद्ध करने के लिए तो पावगी महाश्य ने इतना जोर लगाया, पर किसी वेद मन्त्र से कपास या रुई को निकाल कर न दिखलाया, जो पंजाब की खास उपज और आर्यों की प्रिय वस्तु है.....''।

❑❑

युवा पीढी से कुछ तीखे प्रश्न

(पं. रामनिवास गुणग्राहक, मो. ०९०७९०३९०८८)

मैं अपनी बात का प्रारम्भ रहीम के एक बहुमूल्य दोहे के साथ करना चाहता हूं। पाठकगण सोच कर देखें कि इस दोहे को लिखते समय की मनःस्थिति क्या रही होगी-

"कहि रहीम मुश्किल परी, गाढे दोऊं काम।
सांचे ते तौ जग नहीं, झूठे मिलें न राम।।"

रहीम के अनुसार सच बोलें तो संसार के नहीं रहते और झूठ बोलें तो ईश्वर नहीं मिलता। करें तो क्या करें? रहीम की यह मनोव्यथा तब से लेकर आज तक हर उस व्यक्ति को व्यथित करती है जो सत्य बोलना और सत्य ही सुनना चाहता है। बुद्धिजीवी-विशेषतः साहित्यकार लेखक व कविगण अपने माने हुए सत्य को ही परम् सत्य सिद्ध करने में ही लगे रहते हैं। भिन्न-भिन्न विचारधारा वालों के साथ बैठ कर विचार विमर्श की परम्परा अपनी अन्तिम सांस ले चुकी लगती है। आज विचार-भिन्नता को बुद्धिजीवी कहलाने वालों में विरोध की संज्ञा दी जाती है। यही कारण है कि किसी भी समझ के विविध पक्षों का सन्तुलित विश्लेषण हमारी कार्यशैली में नहीं दिखता। सामाज के जीवन-मरण से जुडे गम्भीर प्रश्नों को खिलवाड की तरह लिया जाता है। पता नहीं क्यों हमारा बुद्धि जीवीवर्ग यह सोच और देख नहीं पा रहा है कि भारत चाहें समृद्धि और संसाधनों की दृष्टि से विश्व की तीसरी, दूसरी या पहली शक्ति बन जाए, वैज्ञानिक उन्नति करते हुए चन्द्रमा पर कॉलोनी बना ले, लेकिन जातिवाद और जनसंख्या विस्फोट की अनदेखी करते रहे तो एक दिन आपस के संघर्ष और भुखमरी के हाथों हमारा सब कुछ नष्ट भ्रष्ट होकर रह जाएगा। इस सच से आंखे बन्द करके आरक्षण के लिए जातीय वैमनस्य को जैसे-तैसे ढोते रहना तथा जनसंख्या नियंत्रण को समुदाय विशेष के साथ जोडकर देखना देश के लिए आत्मघाती सिद्ध होने वाले हैं।

ऐसी गम्भीर समस्याओं के स्थायी समाधान छोटी और जाति, समुदाय व सम्प्रदाय में बँटी सोच से नहीं निकाले जा सकते। मानवतावादी सोच रखकर सत्य के लिए संघर्ष करने का साहस रखने वाले उदार चेता लोगों को ऐसी विकट समस्याओं के लिए काम करना पडेगा। ऐसी ही एक विकट समस्या है अन्तर्जातीय वैवाहिक सम्बन्ध लेखक भारत की प्राचीन वैदिक संस्कृतिक सच्चा सेवक, प्रचारक और प्रतिनिधि है। वेदिक संस्कृति वर्तमान जातिवाद को एक सामाजिक कुरीति के रूप में मानती है। वैदिक संस्कृति में जातिवाद ऊंच नीच के भेदभाव के लिए कोई स्थान नहीं है। वैदिक संस्कृति का संवाहक आर्य समाज आज भी संविधान की मर्यादा में रहकर अन्तर्जातीय विवाह कराता है, मगर समाज में इसे लेकर जो अप्रिय वातावरण बन रहा है, उस पर आज कुछ गम्भीर प्रश्न खडे होते हैं। ध्यान रहे अन्तर्जातीय विवाहों की समस्या कोई सवर्ण-अवर्ण को लेकर ही नहीं है, जाट-राजपूत, ब्राह्मण -वैश्य में भी है। आरक्षित वर्ग में आने वाले, यादव-भीणा, कुम्हार-धोबी आदि सब मिलकर आरक्षण के नाम पर भले ही लड़ लें, लेकिन एक दूसरे के साथ विवाह-सम्बन्ध काने के नाम पर ये एक दूसरे से उतने ही दूर हैं, जितने ब्राह्मण और जाट आ जाट और यादव। संविधान में आरक्षण प्राप्त जातियों के लोग भी आपस में विवाह सम्बन्ध करने लग जाएं तो देश की बहुत बड़ी समस्या हल हो जाए। लगता है कोई भी इस दिशा में एक कदम आगे बढ़ाने के बारे में सोचना ही नहीं चाहता। आश्चर्य तो देखिए कि सिद्धान्त के रूप में जातिवाद का समर्थन आज कोई सार्वजनिक रूप से नहीं कर सकता, मगर व्यावहारिक स्तर पर जातिवाद मिटाने के लिए कोई एक कदम आगे बढाने का साहस नहीं दिखा पता। इसे कहते हैं विचारों और भावनाओं का संघर्ष, यह है परम्परा और प्रगतिशीलता की खींचातानी।

हमें इनसे ऊपर उठना ही होगा।

क्या कारण है कि जन्म आधारित जातिवादी के विरुद्ध अभियान चलाकर गत १००-१२५ वर्षों से अन्तर्जातीय विवाह कराने में सबसे आगे रहने वाले आर्य समाज के एक सेवक को आज अन्तर्जातीय विवाहों को लेकर प्रश्न खड़े करने पड़ रहे हैं? अभी बरेली के एक विधायक की पुत्री ने आरक्षित वर्ग में आनेवाली किसी (अज्ञात) जाति के युवक से प्रेम विवाह कर लिया। टी. वी चैनलों से पता चला कि उन दोनों ने अपने-अपने माता-पिता से इस सम्बन्ध में कोई चर्चा नहीं की। लडके के पिता का कहना है कि वह मुझसे बात करता तो मैं लडकी के पिता से चर्चा अवश्य करता। यह सब जानकर भी किसी ने उन दोनों से यह नहीं पूछा कि क्या १८ वर्ष की आयु के बाद माता-पिता इतने अप्रासंगिक हो जाते हैं कि विवाह जैसे महत्वपूर्ण विषय को लेकर उनकी ऐसी घोर उपेक्षा कर दी जाए, क्या १८ वर्ष की पुत्र-पुत्रियों का माता-पिता के प्रति कोई उत्तरदायित्व नहीं बनता? क्या १८ वर्ष के बाद पुत्र-पुत्रियों को १८ वर्ष तक हमारा सर्वविधि पालन-पोषण करने वाले माता-पिता के प्रति इतना कृतघ्न हो जाना चाहिए कि उनकी मान-मर्यादा को पैरों तले कुचल दिया जाए?

सम्भवतः २०१० के आस-पास की बात है। टी.वी पर हरियाणा में 'ऑनर किलिंग' विषय पर चर्चा चल रही थी। युवा पीढी से विचार जानने के लिए युवक-युवतियां आमंत्रित थे। संचालक एंकर ने एक युवक से पूछा कि मात-पिताओं का कहना यह है कि हमारे पुत्र-पुत्रियां समाज की मान्यताओं के विरुद्ध जाकर विवाह करते हैं तो हमें समाज में भला बुरा सुनना पडता है, अपमानित होना पडता है। क्या युवा पीढी को उनकी इस स्थिति पर नहीं सोचना चाहिए? इस प्रश्न पर एक युवक ने जो उत्तर दिया, उसे सुन कर मेरा हृदय कांप उठा । युवक कहता है- यह समस्या उनकी है, हमें इससे क्या लेना-देना। अगर उनके सामने ऐसी समस्या आती है तो वो स्वयं जाकर किसी कूएं-तालाब में डूबकर आत्महत्या कर लें, हमारी जान क्यों लेते हैं? तब भी वहां किसी ने उसे डांट फटकार न लगाई। हाय! किस युग में जी रहे हैं हम? माना कि हमारे माता-पिता परम्परा से चली आ रही समाज की कुछ कुरीतियों में जकडे हुए हैं तो शिक्षित और विचारशील युवकों को मिलकर हमें जन्म और जीवन देने वाले माता-पिता को समझा कर विश्वास में नहीं लेना चाहिए? मेरे पास भी ऐसे कई युवक-युवतियां विवाह के लिए आते रहे हैं। मैं उन्हें कहता हूं कि चोरी छिपे विवाह कराकर इधर-उधर भागते फिरोगे, इससे अच्छा रहेगा कि किन्हीं प्रभावशाली लोगों, रिश्तेदारों के द्वारा पारिवारिक सहमति बनाओ। समाज में शिक्षित, विचारवान और उदारतावादी व्यक्ति भी होते हैं, अगर आप उनसे जाकर मिलो जो वो आपकी गलती देखकर आपको समझाएंगे या परिवार वालों को समझाएंगे। सडक नालियों की सफाई और पार्कों की देख-रेख तक के लिए समितियां बना लेते हैं, क्या दो पीढियों के वैचारिक टकराव को दूर करके परिवार समाज में अपनापन बनाये रखने के लिए ऐसा कोई समूह नहीं बनाया जा सकता? हमें इस दिशा में भी कुछ करना चाहिए।

बडी कडवी सच्चाई यह है कि हमारी युवा पीढी को नैतिक शिक्षा और चारित्रिक संस्कार आज कहीं से विधिवत् नहीं मिल पा रहे। एक शोकदायक आश्चर्य देखिये कि सभी विद्यालयों को टी.सी. व अंकलातिका के साथ एक चरित्र-निर्माण की दृष्टि से कुछ सिखया-पढाया जाता है? यदि नहीं तो प्रमाण पत्र क्यों? जो सिखाया पढ़ाया ही नहीं, उसका प्रमाण पत्र किस आधार पर दिया जाए? निष्कर्षतः आज की पीढी इतनी संस्कार विहीन हो जाए कि अपने जन्मदाता, पालक-पोषक, सुख दुःख में साथ हंसने-रोनवालों की भावनाओं, पारिवारिक व सामाजिक मान-सम्मान की चिन्ता करना ही छोड दे और हम बुद्धिजीवी कहलाने वाले लिखने-पढने, सम्मेलन-समारोह करने में ही लगे रहें तो यह अपने कर्त्तव्यों की आत्मघाती उपेक्षा सिद्ध होगी। माता-पिता, भाई-बहिन जैसे रक्त सम्बन्ध ही दटूट कर बिखरने लगेंगे तो ऐसे लोग सामाजिक सद्भाव और राष्ट्रीय अखण्डता की सुरक्षा कैसे कर पायेंगे?

❑❑

आर./आर. नं० १६३३०/६७
Post in Delhi R.M.S
०५-११/८/२०१९
भार- ४० ग्राम

अगस्त 2019

रजिस्टर्ड नं० DL (DG -11)/8029/2018-20
लाईसेन्स नं० यू (डी०एन०) १४४/२०१८-२०
Licenced to post without prepayment
Licence No. U (DN) 144/2018-20

पाठकों से निवेदन

१. अपने पत्रों में अपनी ग्राहक संख्या अवश्य ही लिखा करें, अन्यथा कार्यवाही सम्भव नहीं होगी।
२. १५ तारीख तक प्रतीक्षा करके ही दुबारा अंक मँगाएं, यदि अंक न पहुँचा हो।
३. यदि आप अपना पता बदलवायें तो यह ध्यान रखें कि बदले हुए पते पर अंक-प्रेषण एक माह बाद आरम्भ होगा।
४. अंक के रेपर पर अपना पता चैक कर लिया करें। यदि कोई त्रुटि हो, तो सूचना दे दिया करें।
५. जिन ग्राहकों का शुल्क समाप्त है, अविलम्ब भेजने की कृपा करें।

ओ३म्

भारत में फैले सम्प्रदायों की निष्पक्ष व तार्किक समीक्षा के लिए उत्तम कागज़, मनमोहक जिल्द, सुन्दर आकर्षक छपाई एवं (द्वितीय संस्करण से मिलान कर शुद्ध प्रामाणिक संस्करण)

सत्य के प्रचारार्थ

सत्यार्थ प्रकाश

सत्य के प्रचारार्थ

• प्रचार संस्करण (अजिल्द) 23×36÷16	मुद्रित मूल्य 50 रु.	प्रचारार्थ 30 रु.	प्रचारार्थ मूल्य पर कोई कमीशन नहीं
• विशेष संस्करण (सजिल्द) 23×36÷16	मुद्रित मूल्य 80 रु.	प्रचारार्थ 50 रु.	
• उपहार संस्करण	मुद्रित मूल्य 1100 रु.	प्रचारार्थ 750 रु.	
• स्थूलाक्षर सजिल्द 20×30, 8	मुद्रित मूल्य 150 रु.		प्रत्येक प्रति पर 20% कमीशन

कृपया, एक बार सेवा का अवसर अवश्य दें और महर्षि दयानन्द की अनुपम कृति सत्यार्थ प्रकाश के प्रचार प्रसार में सहभागी बनें

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट
427, मन्दिर वाली गली, खारी बावली, दिल्ली-6
Ph. :011-43781191, 09650522778
E-mail : aspt.india@gmail.com

दिनेश कुमार शास्त्री
कार्यालय व्यवस्थापक
मो०-९६५०५२२७७८

छपी पुस्तक/पत्रिका

श्री सेवा में.....
ग्राम.....
डा० .....
जिला.....

मुद्रक, प्रकाशक व सम्पादक धर्मपाल आर्य, स्वामित्व आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, ४२७, गली मन्दिर वाली, नया बांस, खारी बावली, दिल्ली-११०००६ से प्रकाशित एवं तिलक प्रिंटिंग प्रेस, २०४६, बाजार सीता राम, दिल्ली-११०००६ से मुद्रित।